ISSN-0970-6518

हरियाणा खेती

वर्ष 52 अंक 2

वार्षिक चंदा 150/- फरवरी 2019 आजीवन सदस्यता 1500/-

प्रकाशन अनुभाग
विस्तार शिक्षा निदेशालय
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा खेती

निदेशक, शिक्षा विभाग हरियाणा द्वारा उच्च/उच्चतर विद्यालयों के लिए उनके पत्र क्रमांक 25/34.7 4 पु. (2) दिनांक 4.9.74 द्वारा अनुमोदित

© कापीराइट प्रकाशकाधीन

वर्ष 52 | फरवरी 2019 | अंक 02

इस अंक में

लेख का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ
रबी फसलों में चेपा (अल) का समेकित प्रबन्धन	जयलाल यादव, रमेश कुमार एवं सतपाल यादव	2
बेर की मुख्य बीमारियां : प्रबंधन	मनजीत सिंह, हवा सिंह सहारण एवं विनोद कुमार मलिक	3
चने के कीड़े तथा बीमारियां : रोकथाम	मीनू एवं योगिता बाली	4
टमाटर व अन्य सब्जियों में जीवाणु जनित रोग नियन्त्रण	सुनिता चंदेल, प्रनीत चौहान एवं नरेश मेहता	5
भूमि को उपजाऊ – कैसे बनाएं	ममता फौगाट, रीटा दहिया एवं सुनील कुमार	6
मिर्च के हानिकारक कीट व उनका निदान	रूमी रावल एवं योगेश कुमार	6
सब्जियों के लिए पौधशाला प्रबंधन	तन्वी मेहता, एस. डी. दुहन एवं वी. पी. एस. पंघाल	7
ब्राह्मी (बकोपा मोनेरी)	राजेश कुमार आर्य एवं आई. एस. यादव	8
अमरूद के रोग एवं बचाव	राजेन्द्र सिंह, ममता एवं हवा सिंह सहारण	9
पौधों में सूक्ष्म पोषक तत्वों का महत्व	पूजा, एम.एस.ढांडा एवं दीपिका राठी	10
मित्र कीटों का खेती में महत्व	संगीता तिवारी, नरेन्द्र कुमार एवं सुनीता यादव	11
बसन्तकालीन बुवाई हेतु गन्ने की उन्नतशील प्रजातियां	सुधीर शर्मा, रमेश कुमार एवं लोकेश यादव	12
बाल्यावस्था में मानसिक विकास एवं विकार	रीना एवं बिमला ढांडा	18
गर्भवती महिला का आहार	अमृत चावला, वीना जैन एवं आशा बत्तरा	19
स्वच्छता – रखे रोगमुक्त	कुसुम राणा, बी. पी. राणा एवं सुमन मलिक	20
आलू : मूल्य संवर्धन एवं फसलोपरांत प्रबंधन	कनिका पंवार एवं इंदु पांचाल	21
पशुओं में रेबीज़ रोग : एक घातक बीमारी	गौरी चंद्रात्रे, मनीश शर्मा एवं के. के. जाखड़	22
पशुओं मे पेशाब के रुकने (यूरोलिथियासिस) की समस्या : कारण, उपचार व बचाव के उपाय	प्रियंका, सतबीर शर्मा एवं प्रिया	23
जन संचार माध्यमों का बदलता स्वरूप	प्रदीप कुमार चहल, भरत सिंह घणघस एवं राजेश कुमार	24
समाज में मीडिया एवं सोशल मीडिया : सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभाव	जतेश काठपालिया, सुभाष चन्द्र एवं रश्मि त्यागी	25
सर्दी के मौसम में मुर्गीपालन : कैसे करें	प्रियंका, सतबीर शर्मा एवं औम प्रकाश	26
Integrated Farming System (IFS) – Need of an Hour	Anil Kumar Malik, Babu Lal Dhayal and Lokesh Yadav	28
Quality Improvement in Fruit Crops	Surender Singh, Mukesh Kumar and R.S. Saini	29
Pregnancy Diagnosis and its Management in Bitch	Swati Ruhil, Puneet Zhandai and Devan Arora	30
बेरोज़गार युवक एवं किसानों के लिए सर्टिफिकेट कोर्स आरंभ	संदीप आर्य एवं मंजु दहिया	32
स्थाई स्तम्भ : मार्च मास के कृषि कार्य		**13**

तकनीकी सलाहकार
डॉ. आर. एस. हुड्डा
निदेशक, विस्तार शिक्षा

संकलन
डॉ. सूबे सिंह
विस्तार विशेषज्ञ (विस्तार शिक्षा)
विस्तार शिक्षा निदेशालय

सह–निदेशक (प्रकाशन)
डॉ. बिमलेन्द्र कुमारी

संपादक
डॉ. सुषमा आनंद
सह–निदेशक (हिन्दी)

सुनीता सांगवान
सम्पादक (अंग्रेजी)
प्रकाशन अनुभाग

आवरण एवं सज्जा
राजेश कुमार

लेखकों से अनुरोध : हरियाणा खेती के लिए लेख कृपया टाईप करवा कर भेजें अन्यथा लेख स्वीकार नहीं किए जाएंगे। कृपया अपने विभाग का नाम अवश्य लिखें। टाईपिंग के लिए कृति देव फोन्ट का ही प्रयोग करें। अपना लेख हमें ई–मेल पर भी भेज सकते हैं haryanakhetihau@gmail.com

रबी फसलों में चेपा (अल) का समेकित प्रबन्धन

✍ **जयलाल यादव, रमेश कुमार एवं सतपाल यादव**[1]
कृषि विज्ञान केन्द्र, महेन्द्रगढ़
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

रबी फसलों मुख्यत: सरसों, मेथी, धनिया तथा कभी-कभी गेहूं की फसल पर भी चेपा का प्रकोप होता है। इन सभी फसलों पर चेपा (अल/माहू) नामक कीट का आक्रमण हर साल फरवरी-मार्च के महीने में होता है। चेपा की भिन्न-भिन्न जातियां अलग-अलग फसलों को हानि पहुँचाती हैं परन्तु इनका नुकसान पहुंचाने का तरीका लगभग एक जैसा होता है। चेपा फसलों की पत्तियों, नरम टहनियों, फूलों व फलीय भागों का रस चूसकर नुकसान पहुंचाता है। यह विभिन्न फसलों पर किस प्रकार आक्रमण करता है तथा उनका समेकित प्रबन्धन के बारे विवरण नीचे दिया गया है :

सरसों

यह कीट अल, चेपा, माहू इत्यादि नामों से जाना जाता है। यह कीट छोटा, कोमल, हल्के हरे-पीले रंग का 1 से 1.5 मि.मी. लम्बा व जूं के आकार का नन्हा-सा होता है। यह पौधे के प्रत्येक भाग पर समूह में मिलता है परन्तु फूलों पर अधिक होता है। इसके बिना पंख वाले और पंखदार प्रौढ़ एवं शिशु दोनों एक साथ ही समूह में रहते हैं व समुदाय में सभी कीट मादा होते हैं।

जीवन चक्र : शुरू की अवस्था में यह कीट फसल की बाहरी कतारों पर एकत्रित होकर प्रजनन करता है, इन्हें वंश वृद्धि के लिए नर की ज़रूरत नहीं पड़ती। वयस्क मादा बच्चों को जन्म देती है जो 7-10 दिन में पूर्ण रूप से विकसित हो जाते हैं। एक मादा अपने जीवनकाल में 17 से 135 शिशुओं को जन्म देती है। औसतन एक मादा जनवरी-फरवरी के महीने में 5 से 9 शिशुओं को प्रतिदिन जन्म देती है। इस प्रकार एक वर्ष में लगभग 45 पीढ़ियाँ पूरी हो जाती हैं।

नुकसान : यह कीट सरसों जाति की फसलों का सबसे बड़ा शत्रु है और भारत के सभी हिस्सों मे जहाँ भी सरसों उगाई जाती है वहां व्यापक रूप से पाया जाता है। इस कीट से फसल को 25 से 40 प्रतिशत की हानि हो सकती है। इस कीट का प्रकोप सरसों पर दिसम्बर माह के अंतिम सप्ताह में शुरू होता है, जब फसल पर फूल बनने शुरू होते हैं व मार्च तक बना रहता है। पंख वाले प्रौढ़ पहाड़ी क्षेत्रों में हवा के साथ उड़कर मैदानी इलाकों में पौधों के ऊपर बैठ जाते हैं और एक बिना पंखदार परिवार को जन्म देते हैं। इस कीट की संख्या जब आसमान में बादल हों एकदम बढ़ती है, हल्की वर्षा हो जाए (बूंदा-बांदी), हवा में अधिक नमी हो (औसत 70-75 प्रतिशत) तथा तापमान कम हो जाए (औसत 13 डिग्री सैं.ग्रे.) इस कीट के शिशु व प्रौढ़ पौधों के विभिन्न अंगों से रस चूस कर पौधे को कमज़ोर कर देते हैं जिसके कारण कभी-कभी तो फलियां ही नहीं लगती। फलियों में बने दानों का वज़न कम होता है तथा इनमें तेल की मात्रा काफी कम हो जाती है। कीट का लगातार आक्रमण रहने पर पत्तियों पर मधु स्रावित करते हैं। जिससे पत्तियों पर काली फफूंद विकसित हो जाती है जिसे कज्जली फफूंद के नाम से भी जाना जाता है। जिसके कारण पौधे की भोजन बनाने की ताकत कम हो जाती है तथा बढ़वार भी रुक जाती है और पैदावार न के बराबर होती है। तापमान बढ़ने के साथ और पकने से (मार्च में) पंखदार नर और मादा उत्पन्न होने शुरू हो जाते हैं जो हवा के साथ उड़कर ठण्डे पहाडों की ओर चले जाते हैं।

समेकित प्रबन्धन :

1. सरसों की अपेक्षा राया की खेती करनी चाहिए, क्योंकि राया पर कम प्रकोप होता है।
2. सरसों एवं राया की बिजाई अक्तूबर के प्रथम अथवा द्वितीय सप्ताह तक कर दें तो फसल पर इसका प्रकोप कम होता हैं क्योंकि अगेती बोई गई फसलों पर फूल जल्दी आने शुरू हो जाते हैं एवं उस समय इस कीट का प्रकोप शुरू नहीं होता है।
3. सन्तुलित खादों का प्रयोग करें। फसलों में अधिक मात्रा में नाइट्रोजन का प्रयोग करने से इस कीट का आक्रमण बढ़ जाता है।
4. दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में जहां इस कीट के समूह दिखाई दें उन टहनियों के प्रभावित हिस्सों को तोड़कर मिट्टी में दबा दें या नष्ट कर दें।
5. चेपा का आर्थिक कगार (10% पुष्पित पौधों पर 9-10 कीट प्रति पौधा या औसत 13 कीट प्रति पौधा) होने पर 250-400 मि.ली. मेटासिस्टॉक्स 25 ई.सी. या डाईमेथोएट (रोगोर) 30 ई.सी. को फसल बढ़वार के अनुसार 250-400 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें।
6. साग के लिए उगाई गई फसल पर छिड़काव केवल 250-400 मि. ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को फसल की अवस्था अनुरूप 250-400 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ की दर से करें। ज़रूरत पड़ने पर 7-10 दिन बाद फिर दोहराएं तथा छिड़काव के 7 दिनों तक साग का प्रयोग न करें।
7. छिड़काव कार्यक्रम हमेशा 2 बजे के बाद करें ताकि मधुमक्खियों को कोई नुकसान न हो क्योंकि मधुमक्खियां पर-परागण द्वारा उपज बढ़ाने में सहायक होती हैं।
8. मित्र कीट जैसे क्रायसोपा, लेडी बर्ड बीटल व सिरफिड खेत में होने पर चेपा नियन्त्रण हेतु कीटनाशकों का प्रयोग न करें।

मेथी

मेथी की फसल पर लगने वाला चेपा गहरे भूरे काले रंग का होता है और इसे बगला चेपा भी कहा जाता है। इस कीट का प्रकोप भी मुख्यत: फूलों पर ही आरम्भ होता है। जब जनवरी के अन्त या फरवरी के महीने में फूलों के साथ यह कीट समूह में दिखाई देता है। बाद में यह कीट सारी टहनी पर फैल जाता है। इस कीट के भी शिशु व प्रौढ़ पौधों से रस चूस कर हानि पहुँचाते हैं जिससे पौधे की बढ़वार रुक जाती है, फलियां कम लगती हैं और पैदावार में काफी नुकसान होता है।

[1]सहायक वैज्ञानिक (कीट विज्ञान) क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल

समेकित प्रबन्धन :

1. शुरू में कीट ग्रसित टहनियों को तोड़कर नष्ट कर दें।
2. आवश्यकता होने पर 300 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें।

नोट – कीटनाशक से छिड़काव की गई फसल से साग के लिए पत्तियां या तो न तोड़ें या कम से कम 10 दिनों बाद ही तोड़ें।

धनिया

धनिया पर आक्रमण करने वाला चेपा देखने में हल्के पीले से हल्के हरे रंग का होता है। इस कीट के शिशु व प्रौढ़ फूलों व फूलों की टहनियों पर बहुत अधिक मात्रा में रस चूसकर हानि पहुंचाते हैं। ग्रसित फूल या तो खिल ही नहीं पाते या फिर उनमें बीज नहीं बन पाता। फरवरी के महीने में यह कीट बहुत तेज़ी से फैलता है और कुछ ही दिनों में अनदेखी से फसल पर बहुत अधिक हानि पहुँचा देता है। इसलिए इस कीट के फसल पर दिखाई देते ही रोकथाम के कदम उठाने चाहिएं।

समेकित प्रबन्धन:

1. शुरू में कीट ग्रसित टहनियों/फूलों आदि को तोड़कर नष्ट कर दें।
2. 400 मि.ली. मैलथियान 50 ई.सी. को 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़कें।

गेहूं

गेहूं पर लगने वाला चेपा गहरे हरे रंग का होता है। इस कीट का प्रकोप फसल पर फरवरी–मार्च के महीने में ही होता है जब ये गेहूं की पत्तियों व बालियों पर रस चूसता दिखाई देता है। रस चूसते समय एक शहदनुमा पदार्थ छोड़ता रहता है जिसपर काली फफूंद पैदा हो जाती है।

प्रबन्धन:

यदि 12 प्रतिशत पौधों की बालियों या सबसे ऊपर वाली पत्तियों पर चेपा के समूह (एक समूह में 10 कीट तक हों) मिलें तो 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़कें।

लेखकों से अनुरोध

हरियाणा खेती के लिए लेख कृपया टाईप करवा कर भेजें अन्यथा लेख स्वीकार नहीं किए जाएंगे। कृपया अपने विभाग का नाम अवश्य लिखें। लेख में अंग्रज़ी शब्दों का प्रयोग न करें। टाईपिंग के लिए **कृति देव फोन्ट का ही प्रयोग करें**। अपना लेख हमें ई–मेल पर भी भेज सकते हैं :

haryanakhetihau@gmail.com

बेर की मुख्य बीमारियां : प्रबंधन

✍ **मनजीत सिंह, हवा सिंह सहारण एवं विनोद कुमार मलिक**
विस्तार शिक्षा निदेशालय
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

बेर भारत का बहुत ही प्राचीन एवं लोकप्रिय फल है। बेर शुष्क क्षेत्रों या बारानी परिस्थितियों में खेती के लिए उपयुक्त है। इसे इंडियन जुज्यूब और बारानी का बादशाह भी कहा जाता है। बेर एक ऐसा फलदार पेड़ है जो कि एक बार पूरक सिंचाई के स्थापित होने के पश्चात् वर्षा के पानी पर निर्भर रहकर भी फलोत्पादन कर सकता है। यह विटामिन 'सी' व 'बी' का अच्छा स्रोत है तथा इसमें कैल्शियम, लौह और शर्करा प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। सस्ता एवं लोकप्रिय फल होने के कारण इसे गरीबों का मेवा भी कहा जाता है।

बेर की खेती भारत में लगभग सभी राज्यों में होती है परन्तु हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश व गुजरात में अपेक्षाकृत अधिक होती है। हरियाणा के पश्चिमी व दक्षिणी क्षेत्रों की जलवायु शुष्क व गर्म है जो बेर के उत्पादन के लिए महत्वपूर्ण है।

बेर प्राकृतिक पौष्टिक तत्वों से भरपूर व खाने में मीठा व स्वादिष्ट फल है। बेर एक एंटीऑक्सीडेंट फल है परन्तु बेर में लगने वाली बीमारियां इसकी गुणवत्ता व पैदावार या उत्पादन पर प्रभाव डालती हैं। यदि किसान बेर में लगने वाली बीमारियों की सही समय पर पहचान करके उसका प्रबंधन कर लें तो बीमारियों के नुकसान से बचा जा सकता है और उत्पादन को बढ़ा सकते हैं। बेर की मुख्य बीमारियां एवं उनके प्रबंधन निम्न प्रकार हैं :

पाऊडरी मिल्ड्यू : यह बहुत ही घातक बीमारियों में से एक है। इसका प्रभाव अक्तूबर–नवम्बर में शुरू होता है। इससे बेर की फसल में काफी हानि होती है। इस बीमारी की मुख्य पहचान यह है कि इसके फलों व पत्तियों पर सफेद रंग के चूर्ण जैसी परत दिखाई देती है। शुरू में ये धब्बे छोटे होते हैं जो बाद में पूरे फल पर फैल जाते हैं। इस बीमारी के कारण फलों की सतह खुरदरी व फलों का आकार छोटा रह जाता है जिससे पैदावार में भारी गिरावट या कमी हो जाती है।

प्रबंधन : कैराथियान 0.1 प्रतिशत (1.0 मिली लीटर प्रति लीटर पानी) नामक दवाई का पहला छिड़काव फूल निकलने से ठीक पहले तथा दूसरा छिड़काव जब फल मटर के दाने के बराबर हो जाएं तब करें। यदि कैराथियान उपलब्ध न हो तो उसकी जगह सल्फैक्स 0.2% (2.0 ग्राम प्रति लीटर पानी) नामक दवाई का छिड़काव भी कर सकते हैं। सफल रोकथाम के लिए फलों का फंफूदनाशक घोल से तर हो जाना बहुत ज़रूरी है।

आल्टरनेरिया झुलसा रोग : इस बीमारी का प्रकोप ज़्यादातर पत्तियों पर पाया जाता है। इस बीमारी में भूरे रंग के धब्बे पत्तियों की निचली सतह पर दिखाई देते हैं। कभी–कभी धब्बे पत्तियों की ऊपरी सतह पर भी दिखाई देते हैं। बीमारी वाले पत्ते सूखकर गिर जाते हैं।

प्रबंधन : इस बीमारी के समाधान के लिए 0.2% (2.0 ग्राम प्रति लीटर पानी) मैन्कोजेब (इण्डोफिल एम–45 या डायथेन एम–45) नामक दवाई का घोल बनाकर छिड़काव करें। *(शेष पृष्ठ 4 पर)*

[1]पौध संरक्षण संगरोध एवं भण्डारण निदेशालय, फरीदाबाद।
[2]पौध रोग विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

चने के कीड़े तथा बीमारियां : रोकथाम

✍ **मीनू एवं योगिता बाली**
कृषि विज्ञान केंद्र, भिवानी
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा के पश्चिमी भागों में चने का बहुत महत्व है। चने के कुल क्षेत्रफल का 88% हरियाणा के पश्चिमी भागों में ही है। लेकिन चने की फसल में अनेक बीमारियां व कीड़े आक्रमण करते हैं जिनको समय पर नियंत्रित न किया जाए तो ये कम पैदावार का कारण बनते हैं। चने की मुख्य बीमारियों व कीड़ों की रोकथाम निम्न प्रकार से है:

बीमारियां

उखेड़ा : यह बीमारी बिजाई के लगभग 3–6 हफ्ते बाद दिखाई देती है। इसमें पत्तियां मुरझा कर लुढ़क जाती हैं। लेकिन उनमें हरापन रहता है। तने को लंबाई से काटने पर रस वाहिकी काली भूरी दिखाई देती है। उखेड़ा से बचाने के लिए ज़मीन में नमी बनाये रखें व 10 अक्तूबर से पहले बिजाई न करें, बाविस्टीन 2.5 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से बीजोपचार करें। बिजाई से पूर्व बीज का उपचार जैविक फफूंदनाशक बायोडर्मा 4 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज+वीटावैक्स 1 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से करें।

तना गलन: पत्तियां बदरंग होकर गिर जाती हैं। ज़मीन की सतह पर सफेद फफूंद तने को चारों ओर से घेर लेती है।

जड़ गलन रोग: यह दो प्रकार से होता है :

1. गीला जड़ गलन : यह रोग ज़्यादा नमी वाली ज़मीन में होता है।

2. *सूखा जड़ गलन रोग :* यह रोग चने में फूल व फलियां बनते समय ज़्यादा होता है।

इस बीमारी का प्रकोप फसल की अंकुरण अवस्था में या सिंचित क्षेत्रों में जब फसल बड़ी हो जाती है, तब होता है। भूमि की सतह के पास पौधे के तने पर गहरे भूरे धब्बे दिखाई पड़ते हैं। बीमार पौधे के तने व पत्ते हल्के पीले रंग के हो जाते हैं। मुख्य जड़ के नीचे का भाग गल जाने के कारण ज़मीन में ही रह जाता है।

विषाणु रोग : रोगी पौधे छोटे रह जाते हैं तथा संतरी या भूरे रंग के हो जाते हैं। यह बीमारी देसी चने में ज़्यादा आती है। जोड़ वाली जगह पर तिरछा काटने से अंदर भूरा–सा दिखाई देता है। ज़मीन में नमी को संरक्षित करने व 10 अक्तूबर के बाद बिजाई करने से इस रोग से बचा जा सकता है।

कीड़े

दीमक : रेतीली व अर्ध–नमी वाली ज़मीन में यह कीट ज़्यादा सक्रिय रहता है।

रोकथाम : 1500 मी.ली. क्लोरपायरिफॉस 20 ई.सी. को पानी में मिलाकर 2 लीटर घोल बना लें। इस घोल को 1 क्विंटल बीज पर छिड़कें व एकसार उपचारित करने के बाद बोने से पहले रातभर ऐसे ही पड़ा रहने दें।

कटुआ सूंडी : यह कीट उगते हुये पौधों के तने के बीच में व बढ़ते हुये पौधों की शाखाओं को काटकर नुकसान करती है।

रोकथाम : दस किलो 0.4% फेनवलरेट धूड़ा प्रति एकड़ के हिसाब से करें।

फली छेदक सूंडी : यह कीट फलियों में बन रहे हरे बीज/दानों को खा कर नष्ट कर देती है। इस कीड़े की सूंडियां प्यूपा बनने तक लगभग 30–40 फलियां खा जाती हैं।

रोकथाम : 400 मी.ली. क्विनलफॉस 25 ई.सी. या 150 मि.ली. नोवालूरोन 10 ई.सी. 150 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति एकड़ छिड़काव उस समय करें जब एक सूंडी प्रति एक मीटर लाइन पौधों पर मिलने लगे। यदि ज़रूरी हो तो दूसरा छिड़काव 15 दिन बाद करें। बड़ी सूंडियों को हाथ से इकट्ठा करके नष्ट कर दें। खेत से चटरी–मटरी खरपतवार निकाल दें।

(पृष्ठ 3 का शेष)

सरकोस्पोरा लीफ स्पॉट : इस बीमारी का प्रकोप भी केवल पत्तियों पर ही दिखाई देता है। इसमें सबसे पहले पत्तियों पर छोटे–छोटे गोल आकार के धब्बे दिखाई देने लगते हैं। धब्बे बीच में से भूरे रंग के और किनारे पर लाल रंग के दिखाई देते हैं जो बाद में बड़े होकर पत्तियों के दोनों तरफ दिखाई देने लगते हैं। इस बीमारी के अधिक प्रभाव से पत्तियां सूख कर गिर जाती हैं।

प्रबंधन : इसके सामाधान के लिए मैन्कोजेब 0.2% (2.0 ग्राम प्रति लीटर पानी) नामक दवाई के घोल का छिड़काव बीमारी के लक्षण दिखाई देते ही करें व दूसरा छिड़काव 15 दिन के अंतराल में करें।

रतुआ (लीफ रस्ट) : इस बीमारी का प्रभाव पत्तियों पर पाया जाता है। पत्तियों की निचली सतह पर भूरे या नारंगी रंग के छोटे–छोटे कील बन जाते हैं। इस बीमारी से प्रभावित पत्तों का रंग भूरा व गहरा भूरा हो जाता है।

प्रबंधन : इस बीमारी की रोकथाम के लिए 0.2% (2.0 ग्राम प्रति लीटर पानी) मैन्कोजेब या डाईथेन एम–45 नामक दवाई का घोल बनाकर छिड़काव करें।

कजली रोग या काले धब्बों वाली बीमारी (सूटी मोल्ड) : इस बीमारी का प्रभाव ज़्यादातर पत्तियों पर दिखाई देता है तथा इस बीमारी के प्रभाव से पत्तियों की निचली सतह पर गहरे काले रंग के छोटे–छोटे धब्बे से दिखाई देने लगते हैं। अगर इस बीमारी का समय पर उपचार न हो तो बीमारी वाली पत्तियों का रंग ऊपर से भूरे रंग का हो जाता है तथा बीमारी वाली पत्तियां सूखकर नीचे गिरने लगती हैं।

प्रबन्धन : इस बीमारी के प्रबंधन हेतु कॉपर आक्सीक्लोराइड दवाई 0.3% (3 ग्राम प्रति लीटर पानी) के हिसाब से घोल बनाकर छिड़काव करें।

फल गलन : इस बीमारी में फल के निचले हिस्से में हल्के भूरे रंग के धब्बे बन जाते हैं व बीमारी वाले धब्बों के ऊपर छोटे–छोटे काले रंग के दाने दिखाई देते हैं। यह बीमारी कई प्रकार के फफूंदों के कारण होती है।

प्रबन्धन : इस बीमारी के उपचार के लिए कॉपर आक्सीक्लोराइड नामक दवाई 0.2% (0.2 ग्राम प्रति लीटर पानी) के हिसाब से घोल बनाकर छिड़काव करें।

टमाटर व अन्य सब्जियों में जीवाणु जनित रोग नियन्त्रण

✍ सुनिता चंदेल[1], प्रनीत चौहान[1] एवं नरेश मेहता
पादप रोग विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हिमाचल प्रदेश में बेमौसमी सब्जियों की खेती की तरफ लोगों का रूझान तेज़ी से बढ़ा है तथा पिछले दशकों में सब्जी के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्रों में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। प्रदेश की जलवायु विभिन्न प्रकार की सब्जियां उगाने के लिए उपयुक्त है। बागवानी के एकीकृत विकास के लिए विविधता लाना अतिआवश्यक है तथा विविधता लाने के लिए सब्जियों की खेती बहुत महत्वपूर्ण है। करीब 9396 हैक्टेयर भूमि में इसका उत्पादन होता है और वर्ष 2013–2014 में इसकी उत्पादकता 17.3 मीट्रिक टन है। पिछले कुछ वर्षों में सब्जियों के क्षेत्र में कई गुणा वृद्धि हुई है फिर भी सब्जियों के अच्छे उत्पादन एवं गुणवत्ता के लिए विभिन्न रोग प्रमुख रुकावट हैं। प्रदेश में विभिन्न प्रकार की सब्जियां जिनमें टमाटर, शिमला मिर्च व आलू एक मुख्य सब्जी फसल हैं, उगाई जाती हैं। जिनकी खेती प्रदेश में वर्ष भर किसी न किसी क्षेत्र में की जाती है। किसानों की इन्हीं समस्याओं को ध्यान में रखते हुए टमाटर व अन्य सब्जियों के जीवाणु जनित रोगों के प्रबन्धन का निम्नलिखित वर्णन किया गया है :

टमाटर के जीवाणु जनित रोग

जीवाणु धब्बा : यह रोग *जैन्थोमोनास वेसीकेटोरिया* नामक जीवाणु से उत्पन्न होता है। इस रोग के लक्षण पौधे के पत्तों तथा तनों पर छोटे–छोटे धब्बों के रूप में दिखाई देते हैं। जो बाद में गहरे भूरे रंग के हो जाते हैं। धब्बे आपस में मिल जाते हैं तथा इनका आकार विकसित हो जाता है। बाद में पत्ते पीले पड़ जाते हैं। फलों पर भूरे काले रंग के उभरे हुए धब्बे बनते हैं जिनके किनारे अनियमित होते हैं। बाद में ये धब्बे धंस जाते हैं।

रोगचक्र व अनुकूल वातावरण: यह जीवाणु बीज जनित है तथा पौधे के अवशेषों में भी जीवित रहता है। संक्रमित बीज से इस रोग का आक्रमण पौधशाला में भी हो जाता है। रोगी पौधे को खेत में लगाने से रोग खेत में भी फैल जाता है। तापमान (20–25° सेल्सियस) तथा अधिक आर्द्रता (90%) इस रोग के लिए अनुकूल है।

नियन्त्रण: रोगग्रस्त पौधे के अवशेषों तथा फलों को नष्ट कर दें। फसल चक्र अपनाएं तथा रोगमुक्त बीज का चयन करें। बीज को 30 मिनट के लिए स्ट्रैप्टोसाइक्लिन (1 ग्राम/10 लीटर पानी) का छिड़काव करें तथा इसके सात दिन के बाद कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (30 ग्राम/10 लीटर पानी) या बोर्डो मिश्रण (4:4:50) का छिड़काव 7 से 10 दिन के अंतराल पर करें।

मुर्झान रोग: यह रोग *राल्सटोनिया सोलेनेशियरम* नामक जीवाणु से जनित होता है। रोगग्रस्त पौधे के पत्ते बिना पीले पड़े ही नीचे की तरफ झुक जाते हैं तथा बाद में पूरा ही पौधा मुरझा जाता है व मर जाता है।

रोगचक्र व अनुकूल वातावरण: यह जीवाणु भूमि जनित है। अधिक तापमान व नमी इस रोग की वृद्धि के लिए उपयुक्त है।

नियन्त्रण: तीन वर्ष का फसल–चक्र अपनाएं। पौध रोपण से पहले खेत को सौर ऊर्जा से कम से कम 45 दिनों तक उपचारित करें। खेत तैयार करते समय ब्लीचिंग पाऊडर (15 कि.ग्रा./हैक्टेयर) मिट्टी में मिलायें तथा हल्की सिंचाई करें। रोगग्रस्त खेतों में रोग प्रतिरोधक किस्म जैसे सन सीड 7711 का रोपण अधिक उपयुक्त होता है।

जीवाणुज कैंकर रोग: यह रोग *क्लेविबैक्टर मिचिगानेन्सिस* उपप्रजाति *मिचिगानेन्सिस* नामक जीवाणु से होता है। इस रोग से निचले फैलाव के पत्ते मुरझा जाते हैं। तने पर भूरे रंग की धारियां व कैंकर उभर आते हैं। फलों पर भी सफेद रंग से घिरे छोटे भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं।

रोगचक्र व अनुकूल वातावरण: यह जीवाणु संक्रमित बीज, रोगग्रस्त पौधे के अवशेषों व खरपतवार आदि में जीवित रहता है। 28° सेल्सियस तापमान रोग के लिए अनुकूल है। रोग नम वातावरण में पौधे के अन्दर गम्भीर रूप धारण कर लेता है।

नियन्त्रण: रोगग्रस्त पौधे के अवशेषों को एकत्र कर नष्ट कर दें। फसल चक्र अपनायें तथा रोगग्रसित भूमि में टमाटर की फसल कम से कम तीन वर्ष तक न लगाएं। रोगमुक्त बीज का प्रयोग करें। बीज को स्ट्रैप्टोसाइक्लिन (1 ग्राम/10 लीटर पानी) के घोल में 1 घण्टे के लिए उपचारित करें। रोगग्रस्त पौधों को निकाल कर नष्ट कर दें। कॉपर आधारित फंफूदनाशकों का भी प्रयोग छिड़काव के रूप में 10–12 दिन के अन्तराल में कर सकते हैं।

शिमला मिर्च जीवाणु जनित रोग

जीवाणु धब्बा: यह रोग *जैन्थोमोनास वेसीकेटोरिया* नामक जीवाणु से होता है। पत्तियों पर धब्बे छोटे, उठे हुए, भूरे तथा खुरदरे होते हैं। रोगग्रस्त पत्तियां पीली पड़ कर नीचे गिर जाती हैं। इस रोग के लक्षण हरे फलों पर दिखते हैं।

रोगचक्र व अनुकूल वातावरण: यह जीवाणु रोगग्रस्त बीज की सतह पर जीवित रहता है तथा प्रारम्भिक संक्रमण करता है। 20–25° सेल्सियस तापमान तथा अधिक नमी वाला मौसम इस रोग के लिए उपयुक्त है।

नियंत्रण: रोगग्रस्त पौधे के अवशेषों को इकट्ठा करके नष्ट कर दें। फसल–चक्र अपनाएं तथा टमाटर फसल को चक्र में न लगाएं। स्वस्थ फलों से ही बीज लें तथा बीज का उपचार स्ट्रैप्टोसाइक्लिन (1 ग्राम/10 लीटर पानी) से 30 मिनट तक करें। बीज को छांव में सुखायें। फसल पर स्ट्रैप्टोसाइक्लिन (1 ग्राम/10 लीटर पानी) का छिड़काव करें तथा 7–10 दिन के अंतराल पर कॉपर आक्सीक्लोराइड (30 ग्राम/10 लीटर पानी) का छिड़काव करें तथा 7–10 दिन के अंतराल पर कॉपर आक्सीक्लोराइड (30 ग्राम/10 लीटर पानी) या बोर्डो मिश्रण (4:4:40) का छिड़काव करें।

आलू

मुरझान तथा भूरा गलन : यह रोग *रालस्टोनिया सोलनेशियरम* नामक जीवाणु द्वारा होता है। इस रोग में पौधा बिना पीला पड़े पूरी तरह से मुरझाकर सूख जाता है। तेज़ धूप में पौधे की ऊपरी पत्तियां मुरझा जाती हैं। रोग की विकसित अवस्था में तने के निचले हिस्से को तिरछा काट कर दबाने से कटे हुए स्थान से सफेद रंग के जीवाणु दिखाई देते हैं। कन्दों की आंखों के पास गलन व भूरे रंग के धब्बे बनते हैं और ऐसे कंदों को काटने पर घेरे रूपी धब्बे दिखाई देते हैं। जिसमें से जीवाणु पंक भी दिखाई देते हैं।

(शेष पृष्ठ 9 पर)

[1]डा. यशवन्त सिंह परमार औद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय नौणी, सोलन

भूमि को उपजाऊ – कैसे बनाएं

✍ ममता फौगाट, रीटा दहिया एवं सुनील कुमार[1]
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

आज मृदा की उपजाऊ क्षमता खतरे में है। लगातार इसकी उपजाऊ क्षमता घटती जा रही है। बढ़ती हुई जनसंख्या के पालन-पोषण के लिए और हरित क्रांति लाने के लिए ज़्यादा मात्रा में रसायनों के प्रयोग करने, अधिक और गहरी जुताई करने और ज़्यादा पैदावार वाली फसलें उगाने से भूमि का संतुलन बिगड़ चुका है। रसायनों के अधिक प्रयोग से सूक्ष्म जीवों के खत्म होने से मिट्टी की संरचना बिगड़ जाती है। जीवंत मृदा जैविक खेती का आधार है। जैविक खेती में भूमि के स्वास्थ्य की अहम भूमिका है। जैविक खेती ऐसी प्रबंधन प्रक्रिया है जिसमें मृदा स्वास्थ्य व पर्यावरण संरक्षण के साथ-साथ उच्च गुणवत्ता के उत्पाद भी प्राप्त होते हैं। बताया गया है कि गुड़ से बैक्टीरिया की संख्या कई गुणा बढ़ती है और मिट्टी जीवंत हो जाती है। फसल के प्रकार तथा विभिन्न फसलों हेतु पोषकों की आवश्यकता के अनुसार के आधार पर खेत में डाले जाने वाली परिपक्व तत्वों को मिट्टी की जांच के आधार पर देना चाहिए। जैविक खाद, केंचुआ खाद, हरी खाद, एवं जैव उर्वरक समुचित मात्रा में डालने से मिट्टी की उर्वरकता बढ़ती है। रासायनिक आदानों के प्रयोग को अधिकाधिक नकारते हुए फसल अवशेष का उपयोग, अधिक व गहरी जुताई का त्याग तथा खेतों की मेढ़ों पर उपयोगी वृक्ष तथा झाड़ियां लगानी चाहिएं। मिश्रित फसलोत्पादन जैविक खेती का मूल आधार है। मिश्रित फसलोत्पादन से बेहतर प्रकाश संश्लेषण होता है। दलहनी फसलें वायुमण्डल से अत्यधिक मात्रा में नत्रजन एकत्र करती हैं और अपनी सहचरी फसलों को भी उपलब्ध कराती हैं। फसल चक्र जैविक खेती की रीढ़ है। मृदा को शाक्तिशाली और समृद्ध बनाने व प्राकृतिक जीवाणुओं की कार्यक्षमता को बढ़ाने के लिए फसल चक्र अत्यधिक आवश्यक है। उच्च पोषण वाली फसलों की बुवाई से पूर्व तथा पश्चात् दलहनी फसलों की बुवाई करें। अनेक केन्द्रों पर किए गए परीक्षणों के आधार पर फसल चक्रों की अनुशंसा की गई है। उदाहरण के तौर पर सोयाबीन-सरसीम/सरसों/चना (टमाटर/पत्तागोभी-फूलगोभी, मटर एवं मक्का, बाजरे पर लहसुन, चावल, गेहूं/आलू/सरसों/मसूर (मूंगफली,-रबी ज्वार, सोयाबीन-ड्यूरम गेहूं, आलू, मूंग, मिर्च + कपास एवं मक्का-मूंग (सोयाबीन-ड्यूरम गेहूं/सरसों/मूंग/ईसबगोल (चावल-लहसुन, ज्वार+ग्वार-जई-मूंग (मक्का-कपास, मिर्च, प्याज़, एवं बैंगन-सूरजमुखी।

एक उर्वर तथा जीवंत मृदा में जीवाश्म का स्तर पर्याप्त रहना चाहिए। साथ ही पर्याप्त मात्रा में छोटी जीवन अवधि वाले कीट पतंगे होने चाहिएं। जैविक खेती में मृदा स्वास्थ्य को ठीक बनाए रखने के लिए पारम्परिक नुस्खे जिनमें आमतौर पर पशुओं का गोबर, गौमूत्र, छाछ, गुड़, मक्खन आदि के साथ-साथ विभिन्न खलियों के प्रयोग एवं दालों के आटे के

(शेष पृष्ठ 8 पर)

[1]एस. के. आर. ए. यू. बीकानेर

मिर्च के हानिकारक कीट व उनका निदान

✍ रूमी रावल एवं योगेश कुमार
कीट विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

दुनिया के मिर्च उत्पादक देशों में भारत का नाम सबसे ऊपर आता है। मिर्च एक मसाला व नकदी फसल है। इसमें विटामिन 'ए', 'सी' और कुछ खनिज लवण पाए जाते हैं जो मानव सेहत के लिए भी बहुत ही फायदेमंद हैं लेकिन इसके सफल उत्पादन में कई प्रकार की अड़चनें जैसे कीट व रोग आदि आड़े आती हैं। मिर्च की फसल को कुछ कीट नुकसान पहुंचाकर पैदावार कम कर देते हैं। इस लेख में मिर्च की फसल के हानिकारक कीटों व उनके प्रबंधन के बारे में जानकारी दी जा रही है जिसे पढ़ व अपनाकर किसान फसल की अच्छी उपज ले सकते हैं।

दीमक: इस सर्वभक्षी कीट का अधिक प्रकोप सितम्बर से नवम्बर तथा फरवरी-मार्च में होता है। इसका प्रकोप रेतीली मिट्टी, कम पानी और ज़्यादा तापमान की अवस्थाओं में ज़्यादा होता है। ये हल्के भूरे रंग का कीट ज़मीन के नीचे मिट्टी में अपना घर बनाकर रहता है। ये मिर्च की जड़ों व तनों को काटकर हानि पहुंचाते हैं, इस वजह से पौधे मुरझाकर सूख जाते हैं।

रोकथाम: पिछली फसल के अवशेष व ठूंठों को निकाल दें। खेत में गोबर की खाद अच्छी तरह से सड़ा कर डालनी चाहिए। खेत व खेत के आसपास दीमक के घरों व खरपतवारों को नष्ट कर दें।

चूरड़ा: ये छोटे-छोटे कीट, पत्तियों एवं पौधे के अन्य मुलायम भागों से रस चूसते हैं। आक्रमण फसल की छोटी अवस्था में ही शुरू हो जाता है। फूल लगने के समय प्रकोप बहुत भयंकर हो सकता है। इस समय पत्तियां सिकुड़ जाती हैं तथा मुरझाकर ऊपर की ओर मुड़ जाती हैं। पत्तियां पीली भी पड़ जाती हैं। पौधे कमज़ोर हो जाते हैं और उपज बहुत कम हो जाती है।

रोकथाम: इस कीट की रोकथाम के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. का छिड़काव प्रति एकड़ की दर से 200-250 लीटर पानी में मिलाकर 15-20 दिन के अन्तर पर करें।

अष्टपदी (माईट): ये बहुत ही छोटे कीट होते हैं जोकि पतों से रस चूसते हैं जिससे पत्ते पीले पड़ जाते हैं और नीचे की ओर मुड़ जाते हैं। पौधे कमज़ोर हो जाते हैं और पैदावार भी कम होती है।

रोकथाम: अष्टपदी (माईट) की रोकथाम के लिए 300 मि.ली. प्रौम्पट 20 ई.सी. फैनपरोपैथ्रिन 15% व पाइरिप्रोक्सीफेन 5% को 200 लीटर पानी में मिलाकर फसल में फूल आने से पहले, प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें। 10-12 दिन के अन्तराल पर 2-3 बार छिड़काव आवश्यक हो सकता है।

एक कदम स्वच्छता की ओर

सब्जियों के लिए पौधशाला प्रबंधन

✍ तन्वी मेहता, एस. डी. दुहन एवं वी. पी. एस. पंघाल
सब्जी विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

नर्सरी एक सरंक्षित स्थान है जहां पर पौध उपयुक्त परिस्थितियों में उगाई जाती है जब तक कि वो खेत में लगाने योग्य न हो सकें। सब्जियों की पौध तैयार करना सब्जी उत्पादन के लिए एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। इसे अच्छी तरह से तैयार करने के लिए तकनीकी जानकारी का होना आवश्यक है। सब्जियों की खेती दो तरह से की जाती है। पहली प्रकार में सब्जियों के बीजों को प्राय: खेत में सीधा बो दिया जाता है जैसे– भिंडी, लोबिया, गाजर, मूली, शलगम, कद्दू प्रजाति की फसलें, पत्ते वाली सब्जियां तथा फ्रेंचबीन आदि। दूसरी प्रकार की सब्जी फसलों में पहले बीजों को पौधशाला में बिजाई करके पौध तैयार की जाती है तथा बाद में इस पौध की खेत में रोपाई की जाती है जैसे– फूलगोभी, पत्तागोभी, ब्रोकोली, टमाटर, बैंगन, मिर्च, प्याज़, शिमला मिर्च आदि। यहां हम किसानों को मोटे तौर पर बताना चाहेंगे कि जिस सब्जी फसल का बीज आकार में बड़ा होता है उनके बीजों को सीधा बोया जाता है और जिस सब्जी फसल का बीज आकार में छोटा होता है उनकी पहले पौध तैयार की जाती है।

पौधशाला में पौध तैयार करने के लाभ कुछ इस प्रकार हैं :

1. नर्सरी का क्षेत्र छोटा होने के कारण पौध की देखरेख करना आसान हो जाता है।
2. नर्सरी में पौध को कीड़े व बीमारियों से आसानी से बचाया जा सकता है।
3. नर्सरी लगाने से खेत में लगी फसल के लिए 30–35 दिन का अतिरिक्त समय मिल जाता है जिससे किसान की आमदनी बढ़ जाती है।
4. नर्सरी लगाने से खेत प्रबंधन आसान व उसकी लागत कम हो जाती है।
5. बेमौसम में पौध तैयार करके अगेती फसल ली जा सकती है जिससे अधिक लाभ कमाया जा सकता है।
6. सब्जियों का बीज प्राय: महंगा होता है जिससे कि प्रत्येक बीज की देखभाल करना अनिवार्य हो जाता है और नर्सरी में ये काम आसानी से हो जाता है।

नर्सरी को तैयार करने के लिए उपयुक्त स्थान :

1. सब्जी फसलों की नर्सरी के लिए भूमि बलुई दोमट तथा इसका पी. एच. 6–7 होना चाहिए।
2. नर्सरी को हमेशा पानी के स्रोत के पास तैयार करें।
3. नर्सरी छायादार जगह पर नहीं होनी चाहिए। नर्सरी के पौधे को पर्याप्त मात्रा में सूर्य का प्रकाश मिलना चाहिए।
4. पौधशाला या नर्सरी को हमेशा बारिश के दिनों में ऊंचे स्थान पर तैयार करें जिससे पानी न भर सके तथा उचित जल निकासी हो सके।
5. नर्सरी हमेशा किसान के घर के नज़दीक होनी चाहिए ताकि देखभाल ठीक तरह से की जा सके।
6. नर्सरी हमेशा रोगरहित स्थानों पर बनाई जानी चाहिए। उदाहरणत: यदि किसान के पास एक ही एकड़ जगह है तो हर साल खेत के कोने बदलते रहना चाहिए।

बीजों का चयन: बीज हमेशा प्रमाणित कम्पनी से खरीदना चाहिए। अगर किसान अपने बीज इस्तेमाल करें तो बीज आवश्य आदर्श गुणवत्ता के होने चाहिएं। बीज खरीदने का बिल हमेशा संभाल कर रखना चाहिए।

बीजों का अंकुरण परीक्षण: बीज को खराब होने से बचाने के लिए इनका अंकुरण परीक्षण करना चाहिए। इस परीक्षण के बाद किसान अंकुरित बीज की मात्रा का पता लगा सकते हैं। यह परीक्षण बीज बुवाई के कुछ दिन पहले करना चाहिए।

बीजोपचार: बीज की बिजाई करने से पहले बीज को भूमि व जड़ जनित बीमारियों से बचाने के लिए बीज का उपचार करना चाहिए। सब्जियों में ज़्यादातर बीजों का उपचार कैप्टान, थाईरम या बाविस्टिन नामक दवा से 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज द्वारा किया जाता है।

क्यारियां तैयार करने की विधि: सब्जियों की पौध तैयार करने के लिए बीजों की बिजाई क्यारियों में की जाती है। 3 x 1 मीटर लम्बाई व चौड़ाई की क्यारियां बनाई जाती हैं। क्यारियों के बीच में से 1 फीट रास्ता खरपतवार निकालने तथा निराई–गुड़ाई के लिए रखा जाता है। पौध की क्यारियों को वर्षाकाल में आम खेत से 10–15 सैं.मी. ऊंचा उठाकर तथा सर्दी के समय ज़मीन को आम खेत से नीचे रखकर तैयार किया जाता है।

खाद का प्रयोग: तीन मीटर लम्बी क्यारी के लिए 10 कि.ग्रा. गोबर की खाद नर्सरी तैयार करते समय ज़मीन में मिला देते हैं तथा अन्य पोषक तत्वों में 100 ग्राम यूरिया, 150 ग्राम डाई अमोनियम फास्फोट (डी. ए. पी.) तथा 120 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश (पोटाश खाद) प्रति क्यारी की दर से मिलाकर खेत तैयार कर लेते हैं।

क्यारियों का उपचार: बीज को बोने से 1 दिन पहले 3 मी. लम्बी क्यारी में 10–25 ग्राम बाविस्टिन या कैप्टान दवाई को मिट्टी में अच्छी तरह से मिला देना चाहिए। इससे फफूंद वाली भूमि में बीमारियों का प्रकोप कम हो जाता है। वर्षा ऋतु में फार्मल्डीहाइड नामक रसायन के एक भाग को 80–100 भाग पानी में मिलाकर क्यारियों में डालना चाहिए तथा इस दवाई के छिड़काव के 10 दिन बाद ज़मीन को अच्छी तरह से खोदकर छोड़ दें जिससे दवाई की गैस ज़मीन से पूरी तरह से निकल जाए, नहीं तो पौधों के जमाव पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

बीज की बिजाई: नर्सरी में बीज की बिजाई क्यारी में करनी चाहिए। क्यारियों में 5–10 सैं.मी. की दूरी पर सीधी लाइन बना लें तथा 1–2 सैं.मी. गहराई पर बीज डालें। बीज की बिजाई करने के बाद गोबर की सड़ी–गली बारीक खाद से एक पतली परत बनाकर ढक दें। पौध सर्दियों में 5–6 सप्ताह में तथा गर्मियों में 4 सप्ताह में रोपाई के लिए तैयार हो जाती है।

सिंचाई: नर्सरी की फव्वारे से हल्की सिंचाई करें। अगर पानी खुले नाले से लगाएंगे तो बीज पानी के साथ बहकर एक स्थान पर एकत्रित हो जाते हैं। इसलिए हमेशा सिंचाई नियमित रूप से करनी चाहिए।

नर्सरी की देखभाल: बीजों के अच्छे अंकुरण के लिए जब तक बीज अंकुरित न हो जाये, नमी की कमी नहीं होनी चाहिए। इसके लिए गर्मियों में

प्रतिदिन शाम के समय पानी देते रहें। गर्मी, तेज़ धूप से बचाने के लिए नर्सरी पर घास-फूस या सरकंडे का छप्पर डाल दें। जैसे कि सर्दी में बीज देर से जमता है, इसके लिए नर्सरी को सफेद पारदर्शी पॉलिथीन शीट से ढक दें।

कीट व बीमारियों की रोकथाम: कीड़ों का प्रकोप होने पर कीटनाशक दवाइयों जैसे की मैलाथियान 50 ई.सी. का 1.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी के साथ घोल बनाकर 10 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें। आर्द्रगलन की रोकथाम के लिए मिट्टी व बीज का उपचार बिजाई के समय कैप्टान से करें।

पौध रोपण: पौध जब 10-15 सैं.मी. लम्बी हो जाए या 4-6 पत्तियां निकल आएं तो खेत में लगाने के लिए तैयार हो जाती है। पौध को खेत में लगाने से 15 दिन पहले नर्सरी में सिंचाई को कम कर दें जिससे पौधों में प्रतिकूल वातावरण सहन करने की क्षमता बढ़ जाती है। पौध रोपण हमेशा शाम के समय करें जिससे रात की ठंडक में पौधे आसानी से स्थापित हो जाएं। पौध रोपण के बाद हल्की सिंचाई करें।

यदि किसान इन सब बातों को ध्यान में रखेंगे तो पौधशाला में नर्सरी को अच्छे तरीके से तैयार कर सकते हैं तथा इस स्वस्थ पौध को खेत में स्थापित करके अधिक मुनाफा ले सकते हैं।

(पृष्ठ 6 का शेष)

साथ-साथ सामयिक वृक्षों की छायादार मिट्टी का वितरण देखने को मिलता है। इन पारंपरिक उत्पादों का लगातार उपयोग करने से लाभदायक सूक्ष्म जीवों की वृद्धि होती है। सूक्ष्मजीव मिट्टी के पोषक तत्वों को एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तित करते हैं जिससे वो पौधों के प्रयोग में आते हैं। पारंपारिक नुस्खे जिनमें भू-अमृत, जीवमृत और भूमि संजीवनी का प्रयोग किया जाता है। इसके प्रयोग से मृदा में उपस्थित मृदा खनिज पोषक तत्वों के रूप में प्रदान होते रहते हैं। अर्क तथा गौ-मूत्र इत्यादि बहुत ही अच्छे वृद्धि उत्प्रेरक हैं जो अलग-अलग स्थान तथा जलवायु में कारगार सिद्ध हुए हैं। भू-अमृत में अनेकों लाभदायी सूक्ष्म जीव पाये जाते हैं। एक एकड़ के लिए 200 लीटर भू-अमृत की आवश्यकता होती है। दस किलोग्राम गाय का गोबर, 10 लीटर गोमूत्र, 2 कि.ग्रा. गुड़, किसी दाल का आटा, 1 कि.ग्रा. जीवंत मृदा 200 ली. पानी में मिलाएं, 5-7 दिनों हेतु सड़ने दें और दिन में 3 बार मिश्रण को हिलाते रहें। एक एकड़ में सिंचाई जल के साथ प्रयोग करें। पंचगव्य - एक विशिष्ट जैव समृद्धिशाली सूत्र है। पंचगव्य में पौधों की अच्छी बढ़वार हेतु आवश्यक लगभग सभी सूक्ष्म मात्रिक तत्व तथा हार्मोन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। जैविक खेती मृदा की उर्वकता एवं किसानों की उत्पादकता को बढ़ाने में सहायक है। जैविक विधि द्वारा खेती करने से उत्पादन की लागत तो कम होती ही है, इसके अतिरिक्त किसान अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं। समृद्ध मृदा किसानों को सर्वांगीण विकास, शुद्ध वातावरण, पौष्टिक आहार के साथ-2 खुशहाल जीवन जीने की राह दिखा सकती है।

''खेत है तो किसान है और किसान है तो हम सब हैं।
इसलिए किसानों का सशक्त होना बहुत ज़रूरी है।''

ब्राह्मी (बकोपा मोनेरी)

✍ **राजेश कुमार आर्य एवं आई. एस. यादव**
आनुवंशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

ब्राह्मी को सफेद कामनी, जल-नीम व जल ब्राह्मी के नाम से भी जाना जाता है। यह बहुवर्षीय भूस्तरी शाक है। इसकी शाखाएं ऊपर की ओर बढ़ती हैं। ब्राह्मी के पर्ण सरल, छोटे 2.5 से 6 सैं.मी., किनारे दांतेदार, मांसल पर्व पर एक दूसरे के विरुद्ध लगे रहते हैं। पुष्प एकल, कक्षीय, कम्पेनुलेट कसेला श्वेत या नीला, फल कैप्सूल जिसमें स्थायी वर्तिका रहती है।

औषधीय उपयोग: महर्षि चरक के अनुसार ब्राह्मी मनोरोगों की अचूक दवा है। यह अपस्मार में विशेष लाभ करती है। सुश्रुत संहिता के अनुसार ब्राह्मी का उपयोग मस्तिष्क विकृति, नाड़ी दौर्बल्य, उपस्मार, उन्माद एवं स्मृति नाश में लाभकारी है। ब्राह्मी पंचांग का सूखा चूर्ण मानसिक कमज़ोरी, तनाव, घबराहट व अवसाद के रोगियों को देने से लाभ होता है। भावप्रकाश के अनुसार ब्राह्मी मेधावर्धक है। हिस्टीरिया जैसे रोग में तुरंत लाभ करती है। सिर दर्द, चक्कर, भारीपन तथा चिन्ता में ब्राह्मी तेल का प्रयोग उत्तम है। ब्राह्मी की क्रिया मस्तिष्क और मज्जा तंतुओं पर होती है। मस्तिष्क को शान्ति देने के अतिरिक्त यह पौष्टिक टॉनिक का भी काम करती है। अधिक बोलने से स्वर भंग व तुतलाने में भी ब्राह्मी सफलता पूर्वक कार्य करती है। ब्राह्मी को पागलपन व मिर्गी की औषधि भी बताया गया है।

किस्में: सुबोधक व प्रज्ञाशक्ति मुख्य किस्में है।

भूमि तथा जलवायु: प्राकृतिक रूप से नम तथा दलदली, छायादार स्थानों में आसानी से उगती है। समशीतोष्ण जलवायु की आवश्यकता होती है। तेज़ी से बढ़वार 33-40 डिग्री तापमान तथा 65-80 प्रतिशत आर्द्रता पर होती है।

भूमि की तैयारी: गहरी जुताई करने के बाद खेत को तैयार करके समतल बनाते हैं।

बोने का समय: सिंचित दशा में फरवरी-मार्च में तथा असिंचित दशा में जुलाई-अगस्त में बिजाई करें।

बीज की मात्रा: एक एकड़ के लिए लगभग 40 किलो सकर्स की आवश्यकता होती है। नाइपर मोहाली (पंजाब), सीमैप (लखनऊ) एवं जोगेन्द्र नगर (हिमाचल प्रदेश) सकर्स प्राप्ति के मुख्य स्थान हैं।

रोपने की विधि: जड़ युक्त तनों की कलमें सीधे खेत में लगा सकते हैं। 5.0-7.5 सैं.मी. लम्बे सकर्स के टुकड़े क्यारियों में लगाकर 1.5-2.0 माह की पौध तैयार करें, पौधों को 40 x 20 सैं.मी. के अंतर से खेत में प्रत्यारोपित करें। एक बार रोपण करने के बाद 5-6 साल तक यह चलती रहती है और काटने पर दूब के समान फैलती है। रोपने के तुरंत बाद हल्की सिंचाई आवश्यक है।

खाद/उर्वरक: 10-12 टन गोबर की खाद प्रति एकड़ खेत तैयार करते समय डाल दें।

निराई-गुड़ाई: इसके पौधे ज़मीन पर फैलते हैं जो कि बड़े पौधों से स्पर्धा नहीं कर पाते हैं। आरम्भ में हाथ/खुरपे से 15-20 दिन के अंतराल पर खरपतवार निकालें।

सिंचाई: वर्षा ऋतु के बाद सिंचाई करना आवश्यक है। शीत ऋतु में 20 दिन के अंतर से व ग्रीष्म ऋतु में 15 दिन के अंतर से सिंचाई करें, अर्थात मृदा में नमी बनी रहे परंतु खेत में पानी नहीं भरें।

कटाई एवं शुष्क करने की तकनीक: तने को 4–5 सैं.मी. ऊंचाई पर पहली बार जून में और दूसरी कटाई अक्तूबर–नवम्बर में करनी चाहिए, तत्पश्चात् छाया में शाक को सुखाना चाहिए। कटाई किए हुए शाक को तुरंत 70–80 डिग्री ताप पर 30 मिनट के लिए ओवन में रख सकते हैं इसके बाद शाक छाया में या 35 डिग्री ओवन में सुखाना चाहिए। सूखे हुए शाक का भंडारण ठंडे और नमी रहित स्थान पर पॉलिथीन थैलियों आदि में कर सकते हैं।

उत्पादन: लगभग 8–10 क्विं. प्रति एकड़ शुष्क शाक अक्तूबर की कटाई में और लगभग 6–8 क्विं. प्रति एकड़ तक शुष्क शाक जून की कटाई से औसतन वर्ष में दो बार कटाई से शुष्क शाक लगभग 14–18 क्विं. प्रति एकड़ मिल जाता है। यह ताज़ा भी बिक जाता है। प्रति किलो शुष्क शाक का बाज़ार भाव लगभग 20 रुपए है। एक एकड़ पर लगभग 15000 रु. खर्चा होता है। एक एकड़ से शुद्ध आमदनी लगभग 25000 से 30000 रु. तक ली जा सकती है।

(पृष्ठ 5 का शेष)

रोगचक्र व अनुकूल वातावरण: यह जीवाणु मृदा में काफी समय के लिए जनित रहता है। मृदा में भारी नमी व 28–30° सेल्सियस तापमान इस रोग के संक्रमण के लिए अनुकूल है।

नियंत्रण: रोगमुक्त क्षेत्र में साफ बीज का प्रयोग करें। साबुत कंदों का बीज के लिए प्रयोग करें क्योंकि काटने से स्वस्थ कंदों में भी जीवाणु पहुंचने की सम्भावना रहती है। रोगी पौधों को मिट्टी के साथ निकालकर नष्ट कर दें। ब्लीचिंग पाउडर 12.5 कि. ग्रा. प्रति हैक्टेयर का प्रयोग बिजाई के समय उर्वरकों के साथ मिलाकर करें। मक्का, मटर, जौ, बन्दगोभी के साथ 2–3 साल का फसल चक्र अपनाएं। स्ट्रैप्टोसाईक्लीन नामक जीवाणुनाशक 30 ग्राम प्रति 100 लीटर में घोल बनाकर रोगी पौधों के पास मिट्टी में डालें।

कॉमन स्कैब: यह रोग *स्ट्रैप्टोमाइसिस स्कैबिज* नामक जीवाणु से होता है। कंदों पर छोटे भूरे व उभरे हुए धब्बे (दाग) पड़ जाते हैं। और बाद में यह धब्बे आकार में बड़े और अन्ततः कोकी हो जाते हैं। यह धब्बे विशेषतः किनारों से उभरे हुए तथा बीच में से धंसे हुए होते हैं।

रोगचक्र व अनुकूल वातावरण: रोग का प्रथम संक्रमण मृदा में रोगजनक तथा रोग ग्रसित कंदों द्वारा होता है। द्वितीय संक्रमण मृदा जल, हवा तथा रोग संक्रमित कंदो से फैलता है। रोग जनक घावों द्वारा कंदों में प्रवेश करता है। 20–22° सेल्सियस तापमान, मृदा में नमी की कमी तथा 5.2–8.0 पी एच मान इस रोग के संक्रमण के लिए अनुकूल है।

नियंत्रण: रोग मुक्त कंदों का रोपण करें। गेहूं–जौ अथवा प्याज़, मक्की जैसी फसलों के साथ फसल चक्र अपनाएं। मृदा का पी एच मान 5.3 बनाने के लिए सल्फर या जिप्सम का प्रयोग करें। रोग ग्रसित कंदों को 3% बोरिक एसिड+स्ट्रैप्टोसाइक्लिन (3 ग्राम 110 लीटर पानी) के घोल में 30 मिनट तक डुबा लें। मृदा को पी सी एन बी नामक फफूंदनाशक (30 ग्राम/10 लीटर पानी) से उपचारित करें।

अमरूद के रोग एवं बचाव

✍ **राजेन्द्र सिंह, ममता एवं हवा सिंह सहारण**
उद्यान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

अमरूद पौष्टिक गुणों से भरपूर फल है। यह हर प्रकार की मिट्टी व जलवायु में उगाया जा सकता है। सूखेपन में भी इसकी सहनशक्ति है। लेकिन उक्ठा, फल गलन या टहनीमार रोग प्रमुख रूप से लगते हैं।

उक्ठारोग (विल्ट): जड़ों के रोगग्रस्त होने के काफी समय बाद लक्षण दिखाई देते हैं। समन्वित पौधों की पत्तियां पीली पड़कर गिर जाती हैं और बाद में पौधा सूखने लगता है। इसके अन्य कारकों में सूत्रकृमि, विभिन्न तत्वों का अभाव व असन्तुलन तथा जलवायु प्रभावित करते हैं।

रोकथाम: पौधे उन्हीं खेतों में लगाएं जहाँ पानी के निकास की अच्छी व्यवस्था हो। बहुत अधिक भारी मिट्टी में पौधे न लगायें। वर्षा या सिंचाई के पानी को तने के चारों ओर खड़ा न होने दें। रोगग्रस्त पौधों को जड़ सहित उखाड़कर नष्ट कर दें। गड्ढे को फारमैलिन द्वारा उपचार करके दोबारा पौधा लगाएं।

हर पौधे के थाले में 15 ग्राम बावस्टिन मार्च, जून व सितम्बर में डालकर पानी लगा दें तथा मार्च व सितम्बर में पौधों पर 0.3 प्रतिशत ज़िंक सल्फेट का छिड़काव करें।

टहनी मार रोग या फल गलन: फल पकने वाली अवस्था में फलों के ऊपर गोलाकार अनेक धब्बे बनते हैं जोकि बाद में आपस में मिलकर धंस जाते हैं तथा नारंगी रंग के फफूंद उत्पन्न हो जाते हैं। टहनियों पर यदि संक्रमण हो जाये तो डालियाँ या शाखाएं पीछे से सूखने लगती हैं। फलों के संक्रमण होने के फलस्वरूप बनते हुए फल छोटे, करड़े और काले रंग के होते हैं या कई बार पहचान बहुत देर में होती है।

रोकथाम: डालियों को काटकर 0.3 प्रतिशत कॉपरऑक्सीक्लोराइड के घोल का छिड़काव करें और 15 दिन की अवधि पर फल लगने के बाद 2–3 छिड़काव करें।

आल्टरनेरिया लीफ स्पॉट: पत्तियों पर गहरे भूरे रंग के धब्बे बनते हैं। रोगग्रस्त पत्तियां झुलसकर गिर जाती हैं।

रोकथाम: कॉपर ऑक्सीक्लोराइड के 0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव 2 सप्ताह के अन्तर पर 2–3 बार करें।

आवश्यक सूचना

''हरियाणा खेती'' मासिक पत्रिका के सदस्यों को सूचित किया जाता है कि हम उन्हें उनकी पत्रिका नियमित रूप से भेज रहे हैं, अगर फिर भी किसी सदस्य को उसकी पत्रिका नहीं मिल रही है तो अपने क्षेत्र के डाकिया (पोस्टमैन) से सम्पर्क करें। अगर फिर भी पत्रिका नहीं मिलती है तो आप हमारे कार्यालय में आकर अपने हाथ से पत्रिका को पोस्ट करके अपनी तसल्ली करें। **– सह–निदेशक (प्रकाशन)**

पौधों में सूक्ष्म पोषक तत्वों का महत्व

✍ **पूजा, एम.एस.ढांडा एवं दीपिका राठी**
अनुवांशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी के मुख्य कारणों में अधिक उत्पादन देने वाली प्रजातियों का उगाना, कार्बनिक खाद की कम मात्रा देना तथा फसल अवशेषों को जला देना हैं। किसान नत्रजन, फॉस्फोरस व पोटाश का इस्तेमाल तो करते हैं, लेकिन यह इस्तेमाल जागरूक किसान, फसल में लक्षण परिलक्षित होने पर ही कर रहे हैं। यहाँ पर यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि फसल में किसी भी तत्व की कमी के लक्षण काफी देर से परिलक्षित होते हैं, तब तक काफी देर हो चुकी होती है। बेहतर है कि प्रत्येक तीन साल के अंतराल पर खेत में सूक्ष्म पोषक तत्वों की जांच करवाते रहें। जिस तत्व की कमी है, उसे खेत तैयारी में अंतिम जुताई के समय बुरक कर दें। ताकि फसल को उसकी कमी से जूझना न पड़े। मृदा में सूक्ष्म पोषक तत्व के प्रयोग करने पर उपलब्धता धीमी होती है तथा फसल को दो-तीन वर्ष तक ये तत्व सुलभ रहते हैं। यदि मिट्टी की जांच नहीं कराई है तो बुवाई के बाद से ही किसान को अगली फसल पर सतत् निगरानी रखनी चाहिए तथा उनके लक्षणों के अनुरूप पोषक तत्वों की कमी का पता लगाकर फसल को उसकी पूर्ति करें।

ज़िंक (जस्ता): ज़िंक प्रोटीन के निर्माण तथा उपज की गुणवत्ता सुनिश्चित करता है। उसकी कमी फसल में प्राय: 35 से 45 दिन के पश्चात् दिखाई देती है। पहले उसकी कमी ऊपर से दूसरी से चौथी पत्ती पर परिलक्षित होती है। पहले पीले धब्बे, जो धीरे-धीरे पूरी पत्ती को पीली करते हैं तथा यह पीलापन धीरे-धीरे ऊपर से नीचे की ओर बढ़ता है। उसकी कमी से गांठों के बीच की दूरी कम होने के कारण पौधे झाड़ीनुमा दिखते हैं व बाली भी देर से निकलती है। इसकी पूर्ति के लिए 20 से 25 किलो ज़िंक सल्फेट प्रति हैक्टेयर का अंतिम जुताई पर प्रयोग करें। खड़ी फसल में कमी होने पर 0.5% ज़िंक सल्फेट एवं 0.25 प्रतिशत बिना बुझे चूने का दो-तीन बार 10 से 15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें। इसके लिए एक किलो ज़िंक सल्फेट एवं 0.5 किलो बिना बुझा चूना 200 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

बोरान: बोरान का मुख्य कार्य कोशिका विभाजन तथा वृद्धि करना है। यह पराग के विकास में महत्वपूर्ण है। इसकी कमी का मुख्य प्रभाव ऊपर की पत्ती तथा नई कलियों पर पड़ता है। पत्ती धीरे-धीरे धब्बेदार हो जाती हैं। फलियों का विकास रुक जाता है। रंग भूरा-काला हो जाता है। बाली में कुछ हिस्से या पूरी बाली में दाना नहीं बनता है। इसकी पूर्ति के लिए 100 किलो बोरेक्स प्रति हैक्टेयर अंतिम जुताई के समय में बुरकें। खड़ी फसल में कमी होने पर 0.5 प्रतिशत बोरेक्स का दो से तीन बार छिड़काव करें। फूल आने के समय बोरान की कमी होने पर बाली में दानों का पड़ना प्रभावित होता है। अधिक बोरान का प्रयोग भी बुरा असर डालता है।

आयरन (लोहा): आयरन का मुख्य कार्य क्लोरोफिल बनाना है। जो कि प्रकाश संश्लेषण की क्रिया के लिए आवश्यक है। साथ ही यह नत्रजन व सल्फर की स्वांगीकरण में सहायक है। उसकी कमी से गेहूं की नई पत्तियां पीली पड़ जाती हैं लेकिन पत्ती की मुख्य शिराएं हरी रहती हैं। बाद में पत्ती भूरी होकर सूख जाती है। इसकी पूर्ति के लिए 15 से 20 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर फैरस सल्फेट इस्तेमाल करें। यदि खड़ी फसल में इसके लक्षण दिखें तो फैरस सल्फेट का दो या तीन बार छिड़काव करें। ध्यान रहे कि लक्षण दिखते ही छिड़काव करें ताकि अधिक नुक्सान न हो।

मैंगनीज़: यह पौधे की कई एंजाइम की सामान्य प्रक्रिया, नत्रजन तथा प्रकाश संश्लेषण में महत्वपूर्ण है। इसकी कमी में पत्तियां आयरन की कमी की तरह पीली पड़ जाती हैं लेकिन शिराएं हरी रहती हैं। इसकी पूर्ति के लिए 0.5% मैंगनीज़ सल्फेट का दो से तीन बार खड़ी फसल में छिड़काव करना चाहिए।

मोलिब्डेनम: इसका मुख्य कार्य जैविक नत्रजन स्थिरीकरण तथा प्रोटीन निर्माण में सहायता करता है। कमी होने से पुरानी पत्तियों पर हल्के भूरे या पीले धब्बे पड़ जाते हैं, पत्ती मुड़ने लगती है। कभी-कभी प्यालेनुमा आकार ले लेते हैं इसकी पूर्ति के लिए खेत तैयारी के समय 2 से 3 किलोग्राम प्रति हेक्टैयर सोडियम मोलिवेडट या अमोनियम मोलिडेट का इस्तेमाल करें।

सल्फर: सल्फर अमीनो एसिड्स तथा फैटी एसिड्स का प्रमुख अंश है। इसकी कमी भी पहले ऊपरी पत्तियों पर परिलक्षित होती है। इसकी पूर्ति सल्फर वाले खाद मुख्य रूप में सिंगल सुपर फॉस्फेट से की जाती है। खेत तैयारी के समय 40 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर सल्फर तत्व या जिप्सम देकर भी उसकी पूर्ति की जा सकती है।

कॉपर (तांबा): कॉपर क्लोरिकल के निर्माण में सहायक है। यह कई एंजाईम्स का हिस्सा है तथा जैविक नत्रजन के स्थिरीकरण के लिए आवश्यक है। कॉपर की कमी से पत्तियां पीली पड़कर सफेद होने लगती हैं तथा चमक खो देती हैं और झड़ने लगती हैं। इसकी पूर्ति के लिए भूमि में 1.5 से 2 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर कॉपर सल्फेट का इस्तेमाल करें। खड़ी फसल में 0.25 प्रति कॉपर सल्फेट का छिड़काव करके भी कमी पूरी की जा सकती है। फसल यदि पीली पड़ने लगे तो तुरंत विशेषज्ञ से सलाह लें। इसके लिए प्रभावित पौधे जड़ सहित उखाड़कर विशेषज्ञ के पास ले जाएं या खेत पर ही विशेषज्ञ को लाएं ताकि समय पर निदान हो सके।

मित्र कीटों का खेती में महत्व

✍ संगीता तिवारी, नरेन्द्र कुमार[1] एवं सुनीता यादव
कीट विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

अनेक जीव जन्तु देखने में डरावने और दुश्मन जैसे प्रतीत होते हैं लेकिन ये हमारे पशु धन और फसल की सुरक्षा में विभिन्न प्रकार से सहायता भी करते हैं। कुछ जीव फसल को सीधे और परोक्ष रूप से लाभ पहुंचाते हैं। इनसे या तो फसलें सुरक्षित रहती हैं या इनकी पैदावार में वृद्धि होती है, अत: इनको न मारें, बल्कि बढ़ने दें। मित्र कीट प्रकृति में हानि पहुँचाने वाले कीट की संख्या को आर्थिक कगार से नीचे रखता है। इस मित्र कीट का संरक्षण समन्वित कीट नियंत्रण का प्रमुख हिस्सा है। प्रकृति में यह संरक्षण की प्रक्रिया स्वत: ही चलती है लेकिन आधुनिक खेती में रासायनिक कीटनाशकों के प्रयोग से यह सदियों से चली आ रही प्रक्रिया नष्ट हो रही है। दूषित कीटनाशक दवाई के प्रयोग से किसान के मित्र कीट जैसे कि परजीवी, पैरासिटॉइड तथा परभक्षी नष्ट हो रहे हैं। इन सभी कीटों के प्रयोग से हानिकारक कीटों की संख्या को नियंत्रण करने की क्रिया को जैविक कीट नियंत्रण कहा जाता है। कुछ मित्र कीट जैसे ट्राईकोग्राम, लेडी बर्ड बीटल तथा क्राईसोपरला का प्रयोगशाला में उत्पादन होता है। लेकिन अधिकतम मित्र कीट प्रकृति में सदैव उपस्थित रहते हैं जो अपने शत्रु कीट को नियंत्रण करते हैं। परभक्षी छोड़ने के 10 दिन पहले व 10 दिन बाद खेत में कोई कीटनाशक न छिड़कें। खेत में काईसोपा के अण्डे कभी न छोड़ें क्योंकि अण्डे भी दूसरे परजीवियों के द्वारा प्रभावित हो सकते हैं।

प्रमुख मित्र कीटों का विवरण इस प्रकार है:

लेडी बर्ड बीटल: इसके शरीर पर सख्त लाल पंखों पर सात काले धब्बे होते हैं, पेट के नीचे का हिस्सा काले रंग का होता है। यह कीट मुख्य रूप से नारंगी शरीर वाले कीड़ों, चेपा, सफेद मक्खी, तेला आदि को खाता है। एक बीटल अपने जीवन काल में 5,000 चेपा खाती है।

ट्राईकोग्रामा: ट्राइकोग्रामा गहरे रंग का छोटा ततैया कीट है जो लेपीडोपटेरा कुल के लगभग 200 प्रकार के नुकसानदेहक कीड़ों के अण्डों को खाकर जीवित रहता है। अण्डा परजीवी कीट गन्ना, कपास, धान, सूरजमुखी और सब्जियों में हानिकारक तनाबेधक, फलबेधक का जैविक विधि द्वारा नियंत्रण करता है। मादा ट्राइकोग्रामा, पोषक अण्डों में अपने अण्डे देती है और बाद में पोषक अण्डों के हिस्से को चूसकर उसे नष्ट कर देती है। अन्त में ये उनसे ज़िन्दा वयस्क कीड़ों के रूप में निकलते हैं। अण्डे से वयस्क कीड़ा बनने की अवस्था में 10–14 दिन लगते हैं। एक ट्राइकोग्रामा 100 अण्डों को मार देता है। इसका प्रयोग ट्राइकोग्रामा कार्ड के रूप में होता है जिसमें संकलित अण्डे चिपके होते हैं। खेतों में इन्हें नुकसानदेह कीटों के अण्डों के नियंत्रण के लिए प्रयोग किया जाता है। इन कार्ड को छोटे–छोटे टुकड़ों में फाड़ कर खेत के विभिन्न भागों में बीचों–बीच पत्तियों की निचली सतह पर जोड़ कर लगाया जाता है।

सीरफिड मक्खी: सीरफिड मक्खियों के वयस्क के पेट पर काले और पीले बैंड होते हैं। यह नियमित रूप से 300 एफिड्स से ग्रसित खेत में मिलती है। इसके अण्डे भूरे रंग के आयताकार होते हैं। मादा अपने अण्डे एफिड की कालोनियों के आस–पास देती हैं। लार्वा अपने विकास चरण और प्रजातियों के आधार पर 1 से 13 मि.मी. की लम्बाई का होता है। प्यूपा आयताकार और हरे रंग से गहरे भूरे रंग के होते हैं जो कि मिट्टी तथा पौध में प्यूपेसन करते हैं। वयस्क पराग पर फीड करते हैं जबकि लार्वा कीट पर फीड करता है।

टरकनिड मक्खी : इस मक्खी का वयस्क घर वाली मक्खी के जैसा दिखता है। लेकिन इस के शरीर के अंतिम भाग पर नुकीले बाल होते हैं। टरकनिड की मादा अपने अण्डे शत्रु कीट के अन्दर या उसके पास/ऊपर देती हैं। कुछ प्रजातियों में अण्डे मादा कीट के अन्दर ही विकसित होते हैं तथा वह लार्वा को जन्म देती हैं। इस कीट का लार्वा शाकाहारी होता है। प्यूपे की अवधि आम तौर पर 1 से 2 सप्ताह तक रहती है। इस कीट का वयस्क पराग पर फीड करता है।

प्रेईंगमेन्टिस: यह बड़े हरे या भूरे रंग का शिकारी कीट है। इसका आगे का पैर (फोरलेग) राप्टरियल होता है। इस पैर की मदद से यह आकार त्रिकोणीय होता है जो कि आसानी से सभी दिशाओं में अपने शत्रु कीट को देख सकता है। यह आम तौर (एक से अधिक कीट को खाता है) पर पॉलिफंगस है।

क्राईसोपरला: क्राईसोपरला परभक्षी कीट कई तरह की मुलायम सूंडियों, माहू, फूदका, सफेद मक्खी तथा मिलीबग इत्यादि को खाकर फसल को सुरक्षित रखता है। एकीकृत नाशकजीव प्रबन्धन में इस परभक्षी कीट का प्रयोग किया जाता है। यह कीट सामान्यत: हरे रंग का 1 से 1.3 सैं. मी. लम्बा तथा चौड़ाई में 1 से 2.0 मि.मी. होता है। इसका अण्डा स्टाक लिये हरे रंग का होता है। अण्डे से सूंडी 74 दिन में बनती है। सूंडी प्यूपा अवस्था में 5 से 7 दिन रहती है। उस के बाद उस में से वयस्क निकलते हैं। वयस्क 4 दिन बाद अण्डे देना शुरू करते हैं। नर 10 से 12 दिन तथा मादा 35 दिन तक जीवित रहती है।

एपीरिकेनिया: यह परजीवी कीट है जो कि पायरिल्ला के अण्डों, बच्चों व प्रौढ़ तीनों का शिकार करता है। परजीवी कीट एपीरिकेनिया के अंडों के अंदर ही पलते हैं व उन्हें नष्ट करते हैं। इस परजीवी कीट के बच्चे व प्रौढ़ पायरिल्ला का प्राकृतिक नियंत्रण करते हैं। इस परजीवी कीट को 5000 प्यूपा + 500000 अण्डे/है. तथा 1000 प्यूपा/है. दर से खेत पायरिल्ला की उपस्थिति में छोड़ें।

जैविक नियंत्रण के मुख्य लाभ:

1. मित्र कीट स्वयं अपनी संख्या बढ़ा सकता है। यह प्रक्रिया अपने आप निरंतर होती रहती है।
2. इस प्रबंधन पद्धति से हानिकारक कीटों में प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न नहीं होती है।
3. कई मित्र कीटों को प्रयोगशाला में पाल कर कीट नाशक रसायनों से कम खर्च में प्रयोग प्रबंधन का कार्य किया जा सकता है।
4. मित्र कीट शत्रु कीट को स्वयं ढूंढ सकता है।
5. कीटनाशकों के कम प्रयोग से वातावरण भी दूषित नहीं होता है।
6. मित्र कीट कोई हानिकारक अवशेष नहीं छोड़ते हैं और न ही लाभप्रद जीवों को हानि होती है।
7. इस प्रबंधन पद्धति के प्रयोग से हम द्वितीयक कीट के प्रकोप को रोक सकते हैं।

[1]संयोजक व ज़िला विस्तार विशेषज्ञ (कीट विज्ञान) कृषि विज्ञान केन्द्र, सदलपुर (हिसार)

बसन्तकालीन बुवाई हेतु गन्ने की उन्नतशील प्रजातियां

✍ सुधीर शर्मा, रमेश कुमार एवं लोकेश यादव
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, करनाल
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

गन्ना हरियाणा प्रांत की नकदी फसलों में से एक मुख्य फसल है। इसके अंतर्गत प्रांत में लगभग एक लाख हैक्टेयर क्षेत्रफल है। हरियाणा में गन्ने की बुवाई मुख्यत: बसन्त (फरवरी–मार्च) में की जाती है। अधिकांश कृषकों को यह जानकारी नहीं होती है कि इस समय गन्ने की कौन–कौन सी प्रजातियां बुवाई के लिए उपयुक्त हैं। जिस प्रजाति का गन्ना उन्हें सुगमता से मिल जाता है उसी को वे अपने खेत में बो देते हैं। फलस्वरूप न तो अच्छी पैदावार मिल पाती है और न ही चीनी का परता उचित मात्रा में मिल पाता है। गन्ना खेती में प्रजातियों का विशेष महत्व है इसलिए नवीनतम उन्नतशील प्रजातियों के बारे में सम्पूर्ण जानकारी किसानों तक पहुँचाना आवश्यक है। इन उन्नतशील प्रजातियों को अपना कर किसान अच्छी गन्ना उपज व चीनी परता में आशातीत वृद्धि कर सकते हैं।

शीघ्र पकने वाली प्रजातियां

सी ओ एच 160 (CoH 160) : यह एक अगेती पकने वाली व अधिक पैदावार देने वाली नवीनतम किस्म है।इसमें खाण्ड अंश 18 –20 प्रतिशत है। इसका गन्ना ठोस, वज़न में भारी तथा मध्यम मोटाई का है। इसकी मोढ़ी अच्छी तथा यह एक न गिरने वाली किस्म है। यह प्रजाति कीड़ों एवं बीमारियों की प्रतिरोधी है। इस किस्म से अच्छी पैदावार लेने के लिए समय पर जड़ बेधक कीड़ों की रोकथाम आवश्यक है। इसकी औसत पैदावार 340 क्विंटल प्रति एकड़ है। इस किस्म को 90 सैं. मी. खूड़ से खूड़ की दूरी पर ही लगाना चाहिए और इसमें 25 प्रतिशत ज़्यादा पोषक तत्वों की ज़रूरत पड़ती है।

सी ओ एच 56 (CoH 56) : यह एक अगेती पकने वाली व अधिक पैदावार देने वाली किस्म है। इसमें खाण्ड अंश 18.0 प्रतिशत है। इसका गन्ना मध्यम मोटाई का व पत्तियां चौड़ी व हल्के हरे रंग की होती हैं। यह न गिरने वाली व अच्छे फुटाव वाली किस्म है। यह घसेला रोग के लिए अति संवेदनशील है। अत: इसका बीज गर्म व तर हवा विधि द्वारा उपचारित करके ही प्रयोग में लाना चाहिए। इसकी सिफारिश केवल प्रांत के पश्चिमी क्षेत्र के लिए की जाती है। यह लाल सड़न रोग के लिए संवेदनशील है। अत: इसे खड़े पानी की परिस्तिथियों में न उगायें। इसकी औसत पैदावार 300 क्विंटल प्रति एकड़ है।

सी ओ एच 92 (CoH 92) : यह एक अगेती पकने वाली किस्म है। इसमें खांड अंश 18–20 प्रतिशत है। इसका जमाव अच्छा परन्तु फुटाव कम है। इस किस्म का गन्ना मोटा, ठोस तथा लम्बी बढ़वार वाला होता है। अच्छी पैदावार के लिए जड़ बेधक कीड़े की रोकथाम का समय पर प्रबंध आवश्यक है। इसकी औसत पैदावार 250 क्विंटल प्रति एकड़ है। इसकी बिजाई की सिफारिश पूरे हरियाणा प्रान्त के लिए की जाती है।

मध्यम पकने वाली प्रजातियां

सी ओ एच 99 (CoH 99) : यह एक मध्यम पकने वाली किस्म है। इसमें खांड अंश लगभग17.5 प्रतिशत होता है। खड़े पानी, खराब पानी व खराब ज़मीन जैसी परिस्तिथियों में यह एक सर्वोत्तम किस्म है। गिरने के बाद भी पैदावार व चीनी पर प्रतिकूल असर नहीं पड़ता। यह कीड़ों व बीमारियों के लिए संवेदनशील नहीं है। पूरे प्रान्त के लिए इसकी बिजाई की सिफारिश की गई है। इसकी औसत पैदावार 280 क्विंटल प्रति एकड़ है।

सी ओ एच 119 (CoH 119) : यह एक मध्यम पकने वाली किस्म है। इसका गन्ना ठोस, वज़न में भारी तथा मध्यम मोटाई का है। यह किस्म बसन्तकालीन बिजाई के लिए उपयुक्त है। इसकी मोढ़ी अच्छी तथा यह एक न गिरने वाली किस्म है। यह किस्म लाल सड़न रोधक है तथा इसको सारे प्रान्त के लिए अनुमोदित किया गया है। इसकी औसत पैदावार 320 क्विंटल प्रति एकड़ है। इस किस्म की अच्छी पैदावार लेने के लिए समय पर बिजाई तथा मंजूरशुदा (सिफारिश) किया गया बीज व खाद की मात्रा का ही प्रयोग करें।

सी ओ एच 128 (CoH 128) : यह किस्म मध्यम पकने वाली है। इसकी औसत पैदावार 305 क्विंटल प्रति एकड़ है। यह अच्छे फुटाव वाली किस्म है। यह किस्म गन्ने के लाल सड़न रोग की प्रतिरोधी है तथा इसमें कीड़ों का प्रकोप कम होता है। इसमें खाद की मात्रा अन्य मध्यम व पछेती किस्मों सी ओ एच 119, सी ओ एच 1148, सी ओ एस 767 व 7717 के बराबर डाली जाती है।

अन्य शीघ्र पकने वाली प्रजातियां

सी ओ 238 : यह एक अगेती पकने वाली किस्म है। इस किस्म को उत्तर पश्चिम क्षेत्र के लिए जारी किया है जो अधिक गन्ना एवं चीनी उपज के लिए प्रचलित है। यह किस्म सूखे एवं जलमग्नता क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। यह गन्ने की प्रमुख बीमारयों – लाल सड़न व कंडुआ – के प्रति मध्यम प्रतिरोधी है। चोटी बेधक का प्रबंधन इस किस्म के लिए आवश्यक है। इसकी औसत पैदावार 340 क्विंटल प्रति एकड़ है।

सी ओ 118 : इस अगेती किस्म को उत्तर पश्चिम क्षेत्र के लिए वर्ष 2009 में जारी किया गया था। यह एक अधिक गन्ना उपज एवं अधिक चीनी उक्त वाली किस्म है। इस किस्म का फुटाव कम रहता है। इस किस्म को कम नाइट्रोजन की आवश्यकता है। इस किस्म की औसत पैदावार 340 क्विंटल प्रति एकड़ है।

मार्च मास के कृषि कार्य

फसलों में

गन्ना

गन्ने की पछेती किस्मों की कटाई इसी महीने समाप्त करें व नई फसल की बिजाई इस माह पूरी कर लें। उन्नत किस्में, सी ओ जे 64, सी ओ एच 56 व सी ओ एच 92 (अगेती), सी ओ 7717, सी ओ एस 8436, सी ओ एच 99 व सी ओ एच 119 (दर्मियानी), सी ओ एच 128, सी ओ 1148, सी ओ एस 767 व सी ओ एच 110 (पछेती) आदि ही बोएं। खेत की तैयारी के लिए पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तथा इसके बाद 6-8 जुताइयां देसी हल से करके सुहागा लगाएं। ज़मीन के नीचे सख्त सतह को तोड़ने के लिए बिजाई से पहले 1.5 × 1.5 मीटर की दूरी पर चिज़लर को 1.5 फुट गहराई पर 4 साल में एक बार ज़रूर चलाएं। इससे भूमि की भौतिक स्थिति में बहुत सुधार आता है। चिज़लर चलाने के बाद खेत की तैयारी के लिए 2 बार हैरो, 2 बार कल्टीवेटर चलाकर सुहागा लगाएं। एक एकड़ गन्ने की बिजाई के लिए 35-40 क्विंटल गन्ने, यानि लगभग 35,000 दो आंखों वाले टुकड़ों या 23000 तीन आंख वाले टुकड़ों की ज़रूरत होती है। अच्छे जमाव तथा कंडुआ के बीजगत संक्रमण के निवारण हेतु 0.25 प्रतिशत एमिसान या मेन्कोज़ेब (250 ग्राम/100 लीटर पानी) से बीज को 4-5 मिनट डुबोकर उपचार करके ही बोएं। बिजाई दो खूडों में फासला लगभग 60 से 75 सैं.मी. व गहराई 7.5 सैं.मी. रखकर करें। पोरी के 1/4 भाग को दूसरी पोरी पर चढ़ाकर बोएं व बिजाई करने के बाद सारे खेत में सुहागा लगाएं। गन्ने के जमाव को बढ़ाने के लिए आधा सूखा खूड्ड सिंचाई विधि या गड्ढा (पिट) विधि द्वारा भी गन्ने की बिजाई की जा सकती है। दोपहर के समय बिजाई न करें। अच्छे जमाव के लिए बीज गन्ने के 2/3 ऊपरी भाग से ही लेना चाहिए। खरपतवारों की रोकथाम के लिए अट्राजीन 50 घुलनशील पाऊडर 1.6 कि.ग्रा. प्रति एकड़ की दर से बिजाई के 2-3 दिन बाद 250-300 लीटर पानी में घोलकर छिड़कें। एकीकृत खरपतवार नियंत्रण हेतु बिजाई के 35-40 दिन बाद एक गुड़ाई करके दूसरी सिंचाई के बाद नमी में 1.6 किलोग्राम प्रति एकड़ अट्राजीन का छिड़काव करें। अन्त: फसलीकरण में इस शाकनाशक का प्रयोग न करें। चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों का नियंत्रण करने के लिए 1.0 कि.ग्रा. 2,4-डी (80% सोडियम नमक) 250 लीटर पानी में बिजाई के 7-8 सप्ताह बाद प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें। यदि फसल में मोथा (डीला) घास की समस्या हो तो घास उगने पर 2,4-डी (इस्टर) का 400 मि.ली. प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें। 2,4-डी मोथा घास को ऊपर से ही नष्ट करती है इसलिए घास के दोबारा उगने पर छिड़काव को दोहराएं। मोथा (डीला) घास के नियंत्रण के लिए सैम्प्रा (75% हैलोसल्फ्यूरॉन) का 36 ग्रा. प्रति एकड़ की दर से 200 लीटर पानी में घोलकर बिजाई के 35-45 दिन बाद (पहली सिंचाई के 2-3 दिन बाद) जब मोथा घास 3-5 पत्ती की हो तब फ्लैट फैन नोज़ल से छिड़काव करें। अन्त: फसलीकरण में इस शाकनाशक का प्रयोग करें।

कम लागत से अधिक पैदावार प्राप्त करने तथा पूरा लाभ लेने के लिए गन्ना बोने से पहले मिट्टी का परीक्षण कराएं। सामान्यत: 15-20 गाड़ी गोबर की अच्छी प्रकार गली-सड़ी खाद बिजाई से 20-25 दिन पहले डालें। खाद को पूरे खेत में समान रूप से बिखेर कर मिट्टी की ऊपरी तह में मिला दें। यदि खाद कच्ची हो तो 20-25 किलोग्राम यूरिया/एकड़ भी बिखेर दें और हल्की सिंचाई कर दें। बिजाई के समय पोरियों के नीचे 20 किलोग्राम नाइट्रोजन (45 किलोग्राम यूरिया खाद) व 20 किलोग्राम फास्फोरस (125 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट या 45 किलोग्राम डी ए पी)/एकड़ डालें। रेतीली तथा कल्लर भूमि में 10 किलोग्राम ज़िंक सल्फेट भी प्रति एकड़ बिजाई के समय अवश्य प्रयोग करें। यदि ज़मीन में प्राप्य पोटाश कम हो तो 35 किलोग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश/एकड़ भी डालें। गन्ने की मोढ़ी में 65 कि.ग्रा. यूरिया/एकड़ छिट्टा करके पानी दें।

बिजाई के लिए कीटग्रस्त पोरियां न लें। फसल उगते समय दीमक पोरी की आंखों को नष्ट कर देती है। कनसुए के आक्रमण से पौधों की गोभ सूख जाती है। अत: इन दोनों कीटों से फसल को बचाने के लिए बिजाई के समय 2.5 लीटर क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. या 600 मि.ली. फिप्रोलिन (रीजेन्ट) 5 एस.सी. को 600 से 1000 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ खूडों में बीज के ऊपर फव्वारे से डालें। 150 मि.ली. इमिडाकलोप्रिड (कान्फीडोर) 200 एस. एल. को 250-300 लीटर पानी में मिलाकर भी नैपसैक पंप द्वारा इस्तेमाल किया जा सकता है।

गेहूँ और जौ

इस समय फसलें दूधिया अवस्था में होती हैं। अत: इनकी सिंचाई करनी आवश्यक है। अगर खेत में कुछ पौधे मूल किस्म के पौधों से भिन्न दिखाई दें तो उनको बीज की शुद्धता के लिए निकाल दें। खुली कांगियारी से ग्रसित गेहूं की बालियों को देखते ही खेत से सावधानीपूर्वक लिफाफे से ढककर निकाल दें तथा इसे खेत से बाहर ले जाकर मिट्टी में गहरे दबाकर

लेखक :

- अश्विनी कुमार, सह-निदेशक (कृषि परामर्श सेवा)
- एच. एस. सहारण, सह-निदेशक (पादप रोग विज्ञान)
- वी. एस. हुड्डा, सहायक वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान)
- अशोक चन्द्र यादव, परामर्शदाता (सब्जी विज्ञान)
- सरिता, विस्तार विशेषज्ञ (लुवास)
- सूबे सिंह, विस्तार विशेषज्ञ (विस्तार शिक्षा)

विस्तार शिक्षा निदेशालय, गांधी भवन

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

नष्ट करें या जला दें। बालियां निकालते समय पौधे अधिक नहीं हिलाने चाहिएं क्योंकि इससे फफूंदीकण बिखर जाते हैं।

इस महीने गेहूं की पत्तियों के पीलेपन के कई कारण हो सकते हैं। ज़मीन में देर तक पानी खड़ा रहने, अधिक सर्दी या ज़मीन में कंकर होने या फास्फोरस या ज़िंक की कमी के कारण भी पीलापन हो सकता है। अगली फसल में प्रति एकड़ 10 किलोग्राम ज़िंक सल्फेट और फसल की आवश्यकतानुसार फास्फोरस की खाद डालें।

जिन स्थानों में पत्तों की कांगियारी (फ्लैग स्मट) देखें उन पौधों को काटकर, जलाकर नष्ट कर दें।

किसी-किसी वर्ष जौ व गेहूं में अल (चेपा या माहू) का आक्रमण हो जाता है। इस कीट से फसल को बचाने के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

सूरजमुखी

बिजाई के 3 सप्ताह बाद निराई-गुड़ाई अवश्य करें। सूरजमुखी में 24 किलोग्राम नाइट्रोजन व 16 किलोग्राम फास्फोरस उन्नत किस्मों में एवं 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (90 कि.ग्रा. यूरिया) तथा 20 (125 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) किलोग्राम फास्फोरस संकर किस्म के लिए प्रति एकड़ प्रयोग करें। नाइट्रोजन बिजाई व पहली सिंचाई पर बराबर मात्रा में डालें। फास्फोरस बिजाई के समय पोरा करें।

कटुआ सूण्डी या हरे रंग की सूण्डी का आक्रमण हो तो 10 कि.ग्रा. फैनवालरेट 0.4 प्रतिशत प्रति एकड़ धूड़ें या 80 मि.ली. फैनवलरेट 20 ई.सी. या 50 मि.ली. सायपरमेथ्रिन 25 ई.सी. या 150 मि.ली. डैकामेथ्रिन 2.8 ई.सी. को 100-150 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

सरसों व राया

बिना पकी फसल में औसत 10 प्रतिशत या इससे अधिक पौधों पर (चेपा या माहू) का आक्रमण हो तो 400 मि.ली. मैटासिस्टॉक्स 25 ई.सी. या रोगोर 30 ई.सी. को 400 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

सफेद रतुआ तथा मृदुरोमिल रोगग्रस्त टहनियों को काटकर जला दें। पछेती बीजी गई फसलों पर आल्टरनेरिया ब्लाईट, डाऊनी मिल्ड्यू और सफेद रतुआ के उपचार के लिए 600-800 ग्राम डाइथेन या इण्डोफिल एम-45 को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़काव करें। ज़रूरत अनुसार छिड़काव 2-3 बार 15 दिनों के अंतर पर दोहराएं।

चना

वर्षा के अभाव में चने में फल आने के बाद सिंचाई करें। चने में टाट वाली सूण्डी लगने पर 400 मि.ली. क्विनलफॉस 25 ई.सी. या 400 ग्राम कार्बेरिल 50 घु. पा. या 200 मि.ली. मोनोक्रोटोफास 36 एस. एल. या 80 मि.ली. फैनवलरेट 20 ई. सी. या 125 मि.ली. साइपरमैथरिन 10 ई.सी. या 50 मि.ली. साईपरमैथरिन 25 ई.सी. या 150 मि.ली. डैकामैथरिन 28 ई.सी. को 100 लीटर पानी में घोल बनाकर या 150 मि.ली. नोवालूरान 10 ई.सी. (रिमोन) 150 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ छिड़काव करें। अथवा 10 कि.ग्रा. कार्बेरिल 5 प्रतिशत या क्विनलफॉस 1.5 प्रतिशत धूड़ा प्रति एकड़ धूड़ें। एक मीटर लंबे खूड में औसतन एक सूण्डी मिले तब ही कीटनाशक छिड़कें। ज़रूरत पड़ने पर 15 दिन बाद इन्हीं में से किसी एक कीटनाशक का छिड़काव/भुरकाव पुनः करें। झुलसा रोग के लक्षण आते ही फसल पर 500 ग्राम डाइथेन या इण्डोफिल एम-45 का 250 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

कपास

पिछली कपास फसल के ठूंठों से हुए फुटाव को नष्ट करें क्योंकि इन पर विभिन्न प्रकार के कीड़े पनपते हैं। गर्मी के मौसम में मीलीबग भी इन पर शरण लेता है व संख्या-वृद्धि करता है।

कपास की फसल काटने से लेकर अगली फसल लेने तक, जहां भी सूण्डियां हों, उन्हें मारें ताकि आने वाली फसल में इनका कम प्रकोप हो। गुलाबी सूण्डी नवम्बर से मार्च तक कपास के बीजों में, छंटियों के साथ लगे टिण्डों या फिर घरों व मिलों में पड़े बीज में सुषुप्तावस्था में पड़ी रहती है व मार्च के बाद प्यूपा बनते हैं जिनसे पतंगे बन कर उड़ जाते हैं।

जो भी छंटियां मार्च के बाद जलाने के लिए रखनी हों उनको हर हालत में मार्च में ही झाड़ लें व जो भी टिण्डे, कचरा आदि झड़ जाएं उनको जला दें। यह काम अभियान के रूप में करें।

मार्च तक मिलों में प्रायः कपास में से बिनौले व रूई अलग कर लिए जाते हैं। इसलिए विस्तार कार्यकर्त्ताओं को मिलों में जाना चाहिए और जो भी कचरा बाकी बचा पड़ा हो उसे जलवा कर नष्ट करवाना चाहिए।

बरसीम व लूसर्न

चारे के लिए समय-समय पर इन फसलों की कटाई करते रहें। प्रत्येक कटाई के बाद फसल को पानी अवश्य दें। बरसीम की फसल से बीज लेने के लिए शुष्क क्षेत्रों में इसकी कटाई मार्च के पहले सप्ताह तथा नम क्षेत्रों में मार्च के तीसरे सप्ताह के बाद न करें। काशनी, बथुआ आदि खरपतवारों के पौधे हों तो उन्हें खेत से निकाल देना चाहिए। इससे बीज की शुद्धता बनी रहती है।

बैसाखी मूँग

खड़ी फसल की कटाई के तुरंत बाद एक सिंचाई करें। आवश्यकतानुसार दो बार खेत की जुताई करके बैसाखी मूंग की बिजाई मार्च तक पूरी कर लें। मूंग की उन्नत किस्म एम एच 421, एम एच 318, सत्या, बसन्ती व मुस्कान की बिजाई की सिफारिश की जाती है। इस समय एक एकड़ की बिजाई के लिए 10-12 कि.ग्रा. बीज आवश्यक है। सिंचित क्षेत्रों में बिजाई पंक्तियों में लगभग 20-25 सैं.मी. का फासला रखकर करें। बीज की बिजाई से पहले मूंग को राइजोबियम टीके से उपचारित करें। बिजाई के समय 100 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट तथा 12 किलोग्राम यूरिया एक एकड़ में ड्रिल करें। यदि उपर्युक्त उर्वरक उपलब्ध न हों तो 35 किलोग्राम डी. ए. पी. का प्रयोग बिजाई के समय बीज के नीचे पोरा करें। सल्फर की आवश्यकता पूरी करने के लिए 200 किलोग्राम यानि 4 कट्टे जिप्सम/एकड़ भी प्रयोग करें।

नेपियर (हाथी घास)

नेपियर घास की रोपाई मार्च में पूरी कर लें। खेत की तैयारी करके उसमें प्रति एकड़ लगभग 20 गाड़ी गोबर या कम्पोस्ट खाद मिला दें। नेपियर घास

की बिजाई के लिए नेपियर बाजरा संकर नं. 21 ही लगाएं। एक एकड़ के लिए 11,000 तने के टुकड़े (50 सैं.मी. लंबे, दो-तीन आंखों वाले) काफी होंगे। इन जड़ों या तनों के टुकड़ों को कतारों में ढाई फुट तथा टुकड़ों की आपस की दूरी दो फुट रखकर लगाएं। पहले से चली आ रही नेपियर (हाथी) घास की अच्छी तरह निराई-गुड़ाई करके लगभग आधा कट्टा यूरिया प्रति एकड़ के हिसाब से डालें और समय पर सिंचाई करते रहें।

अरहर

मार्च से अरहर की बिजाई की जा सकती है। जहां पर सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है वहां अरहर की किस्म मानक, यू पी ए एस-120 व पारस लें। शुद्ध फसल में पंक्ति से पंक्ति (कतार) का फासला 40 सैं.मी. व मिश्रित फसल में 50 सैं.मी. रखकर बिजाई करें। बीच में एक पंक्ति मूंग की भी लेना लाभदायक रहता है। एक एकड़ के लिए अरहर का 5-6 किलोग्राम बीज डालें। बिजाई के समय बीज को राइजोबियम के टीके से उपचारित करें। बिजाई के समय 100 किलोग्राम सुपर फास्फेट एवं 12-17.5 कि.ग्रा. यूरिया प्रति एकड़ बीज के नीचे ड्रिल करें। यदि सिंगल सुपर फास्फेट न मिले तो 35 किलोग्राम डी. ए. पी. प्रति एकड़ बीज के नीचे ड्रिल करें। इससे नाइट्रोजन तथा फास्फोरस दोनों की आवश्यकता पूरी हो जाएगी। दो कट्टे जिप्सम (100 किलोग्राम) प्रति एकड़ भी प्रयोग करें इससे सल्फर की आवश्यकता पूरी होगी।

गर्मी के चारे

इस माह में अगेते चारे के लिए बाजरा की कोई भी संकर किस्म (दूसरी पीढ़ी), ज्वार की किस्में हरियाणा चरी 136 (एच सी 136), हरियाणा चरी 171 (एच सी 171), स्वीट सूडान घास 59-3 (एस एस जी 59-3), हरियाणा चरी 308 (एच सी 308) व हरियाणा ज्वार 513 (एच जे 513), लोबिया की सी एस 88 व ग्वार की एच एफ जी 156 की बिजाई शुरू करके अप्रैल तक पूरी कर लें। खेत की अच्छी तरह तैयारी करके बाजरे के लिए 3-4 किलोग्राम, ग्वार के लिए लगभग 16 किलोग्राम, सूडान घास के लिए 10-14 किलोग्राम ज्वार के लिए 20 से 24 कि.ग्रा. व लोबिया के हरे चारे के लिए 16-20 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ के हिसाब से तथा कतारों का फासला ज्वार हेतु 25 सैं.मी., बाजरा, ग्वार व लोबिया में 30 सैं.मी. रखकर पोरे से बिजाई करें। बाजरा, ज्वार व सूडान घास की बिजाई के समय 44 किलोग्राम यूरिया प्रति एकड़ के हिसाब से डालें। लोबिया के लिए लगभग 100 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट व 12 कि. ग्रा. यूरिया खाद बिजाई के समय बीज के नीचे प्रति एकड़ पोर दें। चारे के लिए बाजरे की किस्म का ध्यान अवश्य रखें। डाऊनी मिल्ड्यू अवरोधी किस्म ही चुनें।

सब्जियों में

टमाटर

फरवरी में बसंतकालीन फसल की रोपाई के बाद अब फसल को निराई-गुड़ाई तथा सिंचाई की आवश्यकता पड़ेगी। सिंचाई लगभग आठ-दस दिनों के अंतर पर करें। रोपाई करने के लगभग तीन सप्ताह बाद 14 किलोग्राम नाइट्रोजन (30 किलोग्राम यूरिया खाद) प्रति एकड़ की दर से खड़ी फसल में टॉप ड्रैसिंग द्वारा दें। इस उर्वरक को देने के बाद सिंचाई अवश्य करें। फफूंद रोग से रक्षा के लिए रोगों से बचाव हेतु नियमित रूप से 600-800 ग्राम इण्डोफिल एम-45 को 250 लीटर पानी में मिलाकर एक एकड़ खेत में 10-15 दिन के अंतर पर छिड़काव करें। विषाणु रोग वाले पौधों को उखाड़ कर नष्ट कर दें। हड्डा बीटल, हरा तेला व सफेद मक्खी की रोकथाम के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ 15 दिन के अंतर पर छिड़काव करें। इससे विषाणु रोग भी नियंत्रण में किया जा सकता है।

बैंगन

रोपाई की गई बैंगन की फसल में आवश्यकतानुसार सिंचाई करें तथा निराई-गुड़ाई करें। मरी व सूखी हुई पौध के स्थान पर दोबारा पौध की रोपाई करें। पौधरोपण के लगभग तीन सप्ताह बाद खड़ी फसल में 14 किलोग्राम नाइट्रोजन (30 किलोग्राम यूरिया खाद) प्रति एकड़ की दर से दें। यूरिया खाद देने के बाद सिंचाई अवश्य करें। नई फसल में रस चूसने वाले कीड़ों की रोकथाम के लिए 300-400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 200-250 लीटर पानी में मिलाकर 15 दिन के अंतर पर प्रति एकड़ फसल पर छिड़काव करें। टहनियों के कीट ग्रसित भाग को तोड़कर नष्ट कर दें। फूल/फल लगने पर शाखा व फल छेदक तथा अन्य कीड़ों की रोकथाम के लिए नीचे लिखी (क) व (ख) भाग में से बारी-2 किसी एक कीटनाशक दवा को 200-250 लीटर पानी में मिला कर 15-20 दिन के अंतर पर प्रति एकड़ फसल पर छिड़कें।

(क) (i) फेनवालरेट 20 ई.सी.-80 मि.ली.

(ii) साईपरमेथ्रिन 25 ई.सी.-70 मि.ली.

(iii) डैल्टामेथ्रिन 2.8 ई.सी.-200 मि.ली.

(ख) (i) कार्बेरिल 50 डब्ल्यू. पी.-500 ग्रा.

(ii) स्पाइनोसेड 45 एस.सी.-75 ग्राम/80 लीटर पानी

मिर्च

ग्रीष्म ऋतु की फसल की रोपाई यदि फरवरी माह में की है तो उसके लगभग तीन सप्ताह बाद, 8 किलोग्राम नाइट्रोजन (18 किलोग्राम यूरिया खाद) प्रति एकड़ की दर से दें। किसान खाद देने के बाद सिंचाई करें। फसल की निराई-गुड़ाई करें तथा उचित समय से सिंचाई करें। मिर्च की फसल को विषाणु रोग व कीड़ों से बचाने के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर 10-15 दिन के अंतर पर एक एकड़ में लगी फसल पर छिड़काव करें।

मटर

मटर की पत्तियों में सुरंग बनाने वाले कीड़ों का प्रकोप होने पर 400 मि.ली. डाईमेथोएट 30 ई.सी. या 500 मि.ली. मिथाइल डेमेटान 25 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़कें। सफेद चूर्णी रोग के लक्षण दिखते ही 500 ग्राम सल्फैक्स या केराथेन 40 ई.सी.

80 मि.ली. प्रति एकड़ के हिसाब से 200 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। तैयार फलियों को तोड़कर बाजार में भेजें।

पत्तागोभी व गांठगोभी

फसल की आवश्यकतानुसार सिंचाई करें तथा इस माह के अंत तक लगभग सभी फूलों/गांठों की कटाई कर लें।

प्याज़ व लहसुन

प्याज़ की फसल में थ्रिप्स (चूरड़ा) का आक्रमण हो तो 300 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. या 75 मि.ली. फैनवैलरेट 20 ई.सी. या 175 मि.ली. डैल्टामैथ्रिन 2.8 ई.सी. या 60 मि.ली. साईपरमैथ्रिन 25 ई.सी. को 200-250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ की दर से छिड़कें। इसके साथ कोई चिपचिपाहट लाने वाला पदार्थ भी मिला लें जिससे कि घोल भली प्रकार पौधों पर चिपक सके।

मूली

गर्मी में मूली की बिजाई की जा सकती है। इस समय केवल 'पूसा चेतकी' किस्म को ही प्रयोग में लाएं। उचित होगा कि दोमट मिट्टी में छोटी-छोटी डोलियों पर ही इसकी बिजाई करें। डोलियों में 30 से 45 सैं. मी. की दूरी रखें।

पालक

गर्मी की फसल की बिजाई, यदि न की हो तो, अभी भी की जा सकती है। एक एकड़ के लिए लगभग 8 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होगी। जोबनेर ग्रीन, आल ग्रीन या एच एस 23 किस्मों को प्रयोग में लाएं। तैयार खेत में बिजाई 15-20 सैं.मी. की दूरी पर कतारों में करें।

भिण्डी

भिण्डी की बिजाई इस माह में भी की जा सकती है। पूसा सावनी, हिसार उन्नत, हिसार नवीन, एच बी एच 142 व वर्षा उपहार किस्मों का बीज प्रयोग में लें। एक एकड़ के लिए 16-18 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होगी। जड़ गलन से बचाव के लिए बोने से पहले बीज को कारबेंडाज़िम (दो ग्राम प्रति किलोग्राम बीज) नामक फफूंद नाशक दवा से उपचारित करें।

यदि भिण्डी की बिजाई फरवरी माह में की है तो फसल की उचित सिंचाई व निराई-गुड़ाई करें तथा लगभग 30 कि.ग्रा. यूरिया खाद (14 कि.ग्रा. नाइट्रोजन) प्रति एकड़ की दर से बिजाई के लगभग एक महीने के बाद दें। किसान खाद देने के बाद सिंचाई करना आवश्यक है। तापमान के बढ़ने के साथ ही चित्तीदार तना व फलबेधक सूण्डी की रोकथाम के लिए 400-500 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. या 400-500 ग्राम कार्बेरिल 50 डब्ल्यू.पी. को 250-300 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

तरबूज व खरबूजा

फसल की निराई-गुड़ाई करें तथा उचित सिंचाई का प्रबंध करें। बिजाई के लगभग एक माह के बाद 15 कि.ग्रा. यूरिया खाद (7 किलोग्राम नाइट्रोजन) प्रति एकड़ की दर से खड़ी फसल में दें तथा सिंचाई करें। कद्दू जाति की सब्जियों में लाल भूण्डी (लालड़ी) का प्रकोप इस महीने में बहुत अधिक होता है। इसके नियंत्रण के लिए 5 कि.ग्रा. कार्बेरिल 5 डी. को 5 कि.ग्रा. राख में मिला कर प्रति एकड़ धूड़ा करें। इसके अतिरिक्त 25 मि. ली. साईपरमैथ्रिन 25 ई.सी. या 30 मि.ली. फैनवैलरेट 20 ई.सी. या 100 ग्रा. कार्बेरिल 50 घु.पा. को 100 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ फसल में छिड़काव भी किया जा सकता है।

इस कीट की लटों (ग्रब्स), जो जड़ों को खाकर नुकसान पहुंचाती हैं, की रोकथाम के लिए 1.6 लीटर क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. को सिंचाई के साथ लगाएं। तरबूज की फसल में 2 व 4 सच्ची पत्ती की अवस्था में जिबरैलिक एसिड 25 पी.पी.एम. के घोल का छिड़काव करने से प्रति एकड़ कुल उपज में बढ़ोत्तरी होती है। खरबूजे की फसल में भी 2 व 4 सच्ची पत्ती की अवस्थाओं में एथरिल 100 पी.पी.एम. घोल के छिड़काव द्वारा कुल उपज में बढ़ोत्तरी पाई गई है।

कद्दू जाति की अन्य सब्जियां

कद्दू जाति की अन्य सब्जियों की बिजाई इस माह में की जा सकती है।

अरबी

अरबी की बिजाई इस माह में भी की जा सकती है। एक एकड़ के लिए लगभग 320-400 किलोग्राम गांठों की आवश्यकता होती है। यदि बिजाई फरवरी माह में कर दी है तो फसल की निराई-गुड़ाई करें। खरपतवार निकालें तथा सिंचाई करें।

अन्य सब्जियां

ग्वार और लोबिया की बिजाई इस माह में भी की जा सकती है। शकरकन्दी की यदि खेती करनी हो तो इसकी बेलों (काट) का प्रबंध करें। शकरकन्दी की काट रोपण का मुख्य समय अप्रैल से जुलाई होता है। बेलें उगाने के लिए इनके कन्दों को फरवरी से अप्रैल के महीनों में बीजना चाहिए।

फलों में

संतरा, माल्टा, नींबू आदि

अगर अब तक सदाबहार एवं पतझड़ के फलदार नए पौधे नहीं लगाए हों तो दूसरे सप्ताह तक मिट्टी के साथ लगा सकते हैं। लगाए गए पौधों में हल्की सिंचाई अवश्य करें। अगर हो सके तो हर सिंचाई के बाद निराई-गुड़ाई करें ताकि घास-फूस न होने पाए। बड़े पौधों में भी सिंचाई 10 दिन के अंतराल पर अवश्य करें ताकि पानी की कमी से फूल-फल न झड़ें। जट्टी-खट्टी के पौधों की टी (T) तरीके से नर्सरी में प्योंद तैयार करें। अगर नए पौधे में जस्ते, व (कॉपर) की कमी दिखाई देती हो तो 500 ग्राम ज़िंक सल्फेट, 2 किलोग्राम कॉपर सल्फेट और 1-2 किलोग्राम यूरिया 100 लीटर पानी में मिलाकर पौधों पर छिड़काव करें।

यदि तेला, सिल्ला, पत्ती सुरंगी कीड़ा या सफेद मक्खी का आक्रमण हो तो 750 मि.ली. मैटासिस्टॉक्स 25 ई.सी. या 625 मि.ली. रोगोर 30 ई. सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

आम

आम के पौधों में सिंचाई 8–10 दिन के अंतर पर अवश्य करें। इस तरह से नए बने फल कम झड़ेंगे। अगर पिछले महीने उर्वरक न डाले हों तो इस महीने के पहले सप्ताह तक अवश्य डालकर सिंचाई कर दें। अगर पत्तों में नाइट्रोजन की कमी दिखाई देती हो तो इस माह के आखिरी सप्ताह में 2 प्रतिशत यूरिया का छिड़काव करें। ऐसा करने से छोटे बचे फल नहीं झड़ पाएंगे।

छाल खाने वाली सूण्डियां तनों में सुराख करती हैं। इनके नियंत्रण के लिए रूई के फोहों को दवा के घोल में डुबोकर किसी धातु के तार की सहायता से कीटों के प्रत्येक सुराख के अंदर डाल दें। इसके लिए एक लीटर पानी में 40 मि.ली. मैटासिड 50 ई.सी. दवा मिलाकर घोल बनाएं।

तेले की रोकथाम के लिए 500 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. या 1.5 कि.ग्रा. कार्बेरिल 50 घु.पा. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। गोभ छेदक कीट पेड़ की नई कोंपलों में छेद करता है जिससे वे सूख जाती हैं। इसलिए सूखी टहनियों को तोड़कर जला दें तथा नई कोंपलों पर 250 मि.ली. मिथाईल पैराथियान (मैटासिड) 50 ई.सी. या 125 मि. ली. डाईक्लोरवास (नूवान) या 400 मि.ली. रोगोर या 1.0 कि.ग्रा. कार्बेरिल 50 घु. पा. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ बाग में छिड़कें। आम में ब्लैक टिप (काला सिरा) रोग की रोकथाम के लिए बोरेक्स (0.6%) के 2 छिड़काव फूल आने से पहले करें। तीसरा छिड़काव फल बनने के बाद 0.3 प्रतिशत कॉपरऑक्साईड का करें। बाग में पानी की निकासी ठीक रखें ताकि ज़्यादा नमी न रहे।

अंगूर

पिछले साल लगाई गई नई बेलों की सिंचाई अच्छी तरह से करें। बेलों में थोड़ी–2 खाद 25–30 ग्राम यूरिया खाद प्रति पेड़ डालते रहें और सिंचाई भी महीने में कम से कम तीन बार करें और पुरानी बेलों में सिंचाई दो बार अवश्य करें। इस माह के आखिरी सप्ताह में सिंचाई आवश्यक है। बेलों की जाल पर सिधाई ठीक ढंग से करें।

अंगूर का थ्रिप्स (चूरड़ा) भूरे रंग के पतले लंबे कीट होते हैं जो पत्तों से रस चूसते हैं तथा नए निकल रहे पत्तों को कमज़ोर बना देते हैं। इसके भारी आक्रमण से पत्ते लाल पड़ जाते हैं तथा सूख जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए 500 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. या 150 मि.ली. फेनवलरेट 20 ई.सी. को 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ छिड़कें।

बालों वाली सूण्डियां बड़ी तेज़ी से पत्तों को खाती हैं। इनकी रोकथाम के लिए छोटी सूण्डियों को यांत्रिक विधि से नष्ट करें। इसके बाद यदि आवश्यकता हो तो 500 लीटर पानी में 400 मि.ली. डाइक्लोरवास 76 ई.सी. घोल कर एक एकड़ में छिड़काव करें।

आड़ू व अलूचा

नए लगाए गए पौधों की सिंचाई अच्छी तरह से करें। 8–10 दिन के अंतर पर सिंचाई करें और आधी नाइट्रोजन खाद की बची मात्रा इस माह के अंत तक अवश्य डाल दें। इन फलों पर अल या चेपा लगने पर पत्ते मुड़ जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए 500 मि.ली. डाईमेथोएट (रोगोर) 30 ई. सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ पेड़ों पर नए फुटाव से पहले छिड़कें। जब फल मटर के दाने के बराबर हो जाएं तब दूसरा छिड़काव करें। रेतीली मिट्टी में गर्मी में प्राय: अलूचा में जस्ते की कमी देखी गई है। जिसे 3 किलोग्राम ज़िंक सल्फेट व 1.5 किलोग्राम चूना 500 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करने पर ठीक किया जा सकता है।

अमरूद

वर्षा ऋतु की फसल लेने के लिए पौधों में पानी एक सप्ताह के अंतराल पर लगाएं। थ्रिप्स (चूरड़ा) अमरूद के पत्तों पर भी काफी लगता है। जैसा अंगूर में बताया गया है उसी प्रकार इसका नियंत्रण करें।

बेर

पछेती किस्मों की इस माह के पहले सप्ताह में सिंचाई की जा सकती है। फल तोड़ने से पहले सिंचाई बंद कर दें। पके फलों को तोड़कर मण्डी में भेजने का प्रबंध करें। पौधों को दीमक से बचाने के लिए 1 लीटर क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. प्रति एकड़ सिंचाई करते समय डालें।

अन्य फल

सिंचाई हर 8–10 दिन के बाद अवश्य करें। जुलाई–अगस्त में लगाए जाने वाले पौधों के लिए ज़मीन की उपयुक्तता जानने के लिए मिट्टी के नमूने लेकर मिट्टी परीक्षण प्रयोगशाला में भेजें। खाली ज़मीन को निशानदेही के लिए तैयार करवा लें। पपीते के पौधों को तैयार करने के लिए नर्सरी की बिजाई इसी माह में पूरी करें। 120 ग्राम बीज को केप्टान से उपचारित करके नर्सरी में लगाएं। यह नर्सरी एक एकड़ के लिए पर्याप्त है।

नोट : पानी की कमी को देखते हुए सिंचाई ठीक ढंग से करें। हर सिंचाई के बाद निराई–गुड़ाई करें। ज़मीन से नमी न उडने दें। गोड़ाई करने के बाद सरसों का तूड़ा या घास–फूस (मल्चिंग मैटीरियल) ज़मीन पर बखेर दें। इससे ज़मीन से पानी नहीं उड़ेगा।

पशुओं में

गाय–भैंस

- ग्रीष्म काल की शुरुआत होने वाली है, अत: पशु आवास में उचित प्रबंधन करें।
- दिन के गर्मी के तापमान और रात के तापमान से पशुओं को ज़्यादा नुकसान होता है, अत: मार्च मास में भी रात्रि में पशु–आवास में उचित प्रबंध रखें।
- यदि सूखी तूड़ी नई हो तो, यह पशु चारे में पुरानी तूड़ी के साथ मिश्रित करके इस्तेमाल करें। एकदम नई तूड़ी या सूखा चारा बदलाव से पशुओं में बंधा पड़ सकता है।
- मौसम बदलाव के साथ–साथ बीमारियों का प्रकोप बढ़ सकता है। विशेषकर परजीवी जनित व सांस की बीमारियां (गलघोंटू इत्यादि)। अत: पशु–चिकित्सक से सम्पर्क कर गलघोंटू, मुँह–खुर इत्यादि के टीकाकरण ज़रूर करें। नए खरीदे पशुओं का पशु–चिकित्सक से विशेष रूप से टीकाकरण करवाएं।

- इस माह में परजीवी (चीचड़, मक्खी, मच्छर आदि) का प्रकोप बढ़ सकता है, अत: पशुशाला में इनके बचाव के प्रावधान करें जैसे कि पशुशाला में पानी, कीचड़ का जमाव न होने देना, मच्छरदानी का प्रयोग करना, पशुओं पर खरहरा मारना, नियमित रूप से साफ-सफाई करवाना इत्यादि।
- पशुपालक मक्खी-मच्छर से बचाव के लिए कीटनाशक दवाओं के साथ-साथ नीम का तेल का प्रयोग पशु-शरीर पर कर सकते हैं। पशुपालक कीटनाशक दवाओं का प्रयोग करते समय सावधानी बरतें, छिड़काव करते समय शरीर (आँख-नाक, हाथ-पैर आदि) ढक कर रखें। छिड़काव से पहले सदैव पशुओं को पानी पिला लें अन्यथा पशु दवा चाट सकता है, पशु-शरीर के साथ-साथ पशुशाला के फर्श व दीवारों (कम से कम 4 फीट तक) ज़रूर छिड़काव करें ताकि परजीवी के अण्डे भी समाप्त हों। कीटनाशक दवा कभी-भी तूड़ी-घर में न रखें।
- पशुओं को हर साल ब्याने योग्य रहने के लिए अच्छे प्रजनन की आवश्यकता होती है जिसमें खनिज मिश्रण का महत्वपूर्ण योगदान है, अत: यह सुनिश्चित करें कि हर पशु को हर दिन खनिज-मिश्रण की उपलब्धता रहे।
- भेड़-बकरियों को रात्रि समय में छत के नीचे ज़रूर रखें व इनमें फड़कीया और पी.पी.आर. आदि रोगों का टीकाकरण करवाएं।
- हरे चारे (जई इत्यादि) का परिरक्षण साईलेज के रूप में करें।
- यदि फरवरी में मक्का की बिजाई न की हो तो मार्च में करें।

गृह विज्ञान

- गर्म कपड़ों की मुरम्मत करके, धोकर या ड्राईक्लीन करवाकर उचित स्थान या संदूक में रखें।
- गर्म कपड़ों को रखते समय उनमें फिनाइल की अच्छी किस्म की गोलियां रख दें या नीम की सूखी पत्तियां भी डाली जा सकती हैं।
- फिनाइल की गोलियां संदूक में इधर-उधर नहीं बिखेरनी चाहिएं। 3-4 गोलियां छोटे से कपड़े में लपेट कर बराबर दूरी पर डाल देनी चाहिएं।
- फल व सब्जियों को खाने से पहले अच्छी तरह धो लेना चाहिए।
- प्रतिदिन स्नान करना चाहिए और नाखून, बाल व शरीर को साफ रखना चाहिए।
- होली पर कांजी, नमकीन और मिठाइयां घर पर ही बनानी चाहिएं। क्योंकि घर पर बना सामान शुद्ध होने के कारण सर्वोत्तम माना जाता है।
- मौसम के अनुसार अचार व चटनी भी घर पर ही बनानी चाहिए।

बाल्यावस्था में मानसिक विकास एवं विकार

✍ रीना एवं बिमला ढांडा
मानव विकास एवं पारिवारिक अध्ययन
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

जीवन के पहले तीन वर्षों में, मस्तिष्क का विकास हो चुका होता है। छह साल की उम्र तक बच्चे बोलना, चलना, बात करना, अपना पोषण करना, साथियों के साथ खेलना, जिज्ञासा प्रकट करना तथा भावनाओं को व्यक्त करना सीख चुके होते हैं । बाल्यावस्था का समय 6 से 12 वर्ष के बीच को कहा जाता है - शैक्षिक दृष्टिकोण से ये अवस्था जीवन की महत्वपूर्ण अवस्था है। इस अवस्था में बच्चे नई-नई चीज़ों को सीखते हैं इसलिए इसे अनोखा समय भी कहा जाता हैं क्योंकि इस अवस्था में बच्चों में मूर्त चिंतन, तर्क शक्तियों, वैचारिक क्रिया का विकास हो जाता है इसलिए इस अवस्था में सीखने तथा समझने की सबसे सर्वोत्तम अवस्था होती है। इस अवस्था को जीवन का निर्माणकारी समय भी कहा जाता है क्योंकि इसमें जो संस्कार प्राप्त होते हैं वो जीवन भर रहते हैं। इस अवस्था को झूठ परिपक्वता की अवस्था भी कहा जाता है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो इस अवस्था के बच्चे अपने बड़ों की देखा-देखी नकल तो करते हैं परन्तु परिपक्व नहीं होते हैं। इसलिए इस अवस्था को मिथ्या परिपक्वता की अवस्था भी कहा जाता है। इसलिये ये अवस्था सीखने तथा समझने की सबसे सर्वोत्तम अवस्था होती है।

बाल्यावस्था में मानसिक विकार : ये जान कर शायद आपको आश्चर्य हो कि बच्चे भी मनोविकारों का शिकार हो जाते हैं। इस अवस्था में, आमतौर पर ये विकार पहली बार शैशवकाल, बाल्यावस्था या किशोरावस्था में पहचान में आते हैं। इन में से कुछ सावधान-अभाव अतिसक्रिय विकार पाए जाते हैं जिसमें बच्चा सावधान या एकाग्र नहीं रहता या वह अत्यधिक फुर्तीला व्यवहार करता है।

स्वलीन विकार (आत्मकेंद्रित) : यह मस्तिष्क के विकास के दौरान होने वाला विकार है जो बच्चे के सामाजिक व्यवहार को प्रभावित करता है । जिसमें बच्चा अंतर्मुखी हो जाता है, बिल्कुल नहीं मुस्कुराता और देर से भाषा सीखता है ।

चिंता या घबराहट विकार : यदि कोई बच्चा बिना किसी विशेष कारण के डरा या भयभीत हो, चिंता महसूस करता है, तो इसे हम चिंता विकार कह सकते हैं कि वह बच्चा चिंता विकार से ग्रस्त है। चिंता विकार विभिन्न प्रकार के होते हैं, जिसमें चिंता की भावना विभिन्न रूपों में दिखाई देती है। जहां बच्चा बार-बार एक ही बात को सोचता रहता है और अपनी क्रियाओं को दोहराता रहता है।

मनोदशा विकार : मनोभाव (मूड डिसॉर्डर) लंबे समय से किसी से बात न करें, इस तरह के बच्चे किसी एक मनोभाव पर ठहरे (स्थिर) रहते हैं, या मन के भावों में अदल-बदल करते रहते हैं जैसे कि कोई बच्चा कुछ दिनों तक उदास रहे या किसी एक दिन उदास रहे और दूसरे ही दिन खुश रहे या उसके व्यवहार का तत्कालीन परिस्थिति से कुछ संबंध न हो, वे बच्चे मनोदशा विकार के शिकार हो सकते हैं।

बाल्यावस्था में मानसिक विकास और विशेषताएं :-

❖ **नई-नई चीज़ों को सीखने की प्रवृत्ति :** इस अवस्था में बालक के समझने, स्मरण करने, विचार करने, समस्या समाधान करने, तर्क चिन्तन व निर्णय लेने आदि की क्षमता का विकास हो जाता है। क्योंकि इस अवस्था में बच्चे स्कूल जाने लग जाते हैं और पढ़ने, लिखने व सीखने में अधिक रुचि लेते हैं।

❖ **संग्रह की प्रवृत्ति :** बच्चे समूह में रहना व कार्य करना पसन्द करते हैं। साथ ही अनुकरण, सहानुभूति व सहयोग आदि की सामान्य प्रवृत्तियों का विकास भी इस अवस्था में हो जाता है ।

❖ **रचनात्मक कार्यों में आनंद लेना :** वह रचनात्मक कार्यों में रुचि लेने लगता है। जैसे उसे लकड़ी, कागज़ व मिट्टी की वस्तुओं को बनाने में आनन्द मिलता है।

❖ **वास्तविक चीज़ों की पहचान :** बच्चे पर्यावरण की वास्तविकताओं को समझने लगते हैं और उनमें आत्मविश्वास विकसित हो जाता है। वह छोटी-छोटी घटनाओं और बातों का वर्णन करने लगता है।

❖ **नैतिक गुणों का विकास :** इसमें बच्चा किसी की नकल नहीं करता जैसे-बचपन में माँ-बाप को नाम से पुकारता था लकिन बाद में माँ-पापा कहने लग जाता है।

❖ **यथार्थवादी दृष्टिकोण :** यथार्थ का अर्थ है - सत्य जैसे-पहले उसको बताया जाता था कि वह चाँद मामा हैं परन्तु इस अवस्था में वह चाँद को चाँद न कह कर पृथ्वी का ग्रह कहने लग जाता है।

❖ **काम प्रवृति की निम्नता :** इस अवस्था के बच्चे लिंग भेद नहीं समझते हैं। वह सभी के साथ घुल-मिल कर रहते हैं।

विकास को प्रभावित करने वाले कारक :-

- ❖ घर एवं बाहर का वातावरण
- ❖ मां-बाप, भाई-बहन की संगति
- ❖ पड़ोस तथा स्कूल में संगति
- ❖ पौष्टिक भोजन
- ❖ परिपक्वता
- ❖ अभिरूचि
- ❖ शारीरिक स्वास्थ्य
- ❖ बौद्धिक-स्तर
- ❖ अन्त: स्त्रावी ग्रंथियाँ
- ❖ पारिवारिक परिस्थितियां
- ❖ भौगोलिक स्थिति
- ❖ वंशानुक्रम
- ❖ लिन्गीय भेद
- ❖ आकान्क्षा-स्तर

कुछ बातों को ध्यान में रख कर हम अपने बच्चों को मानसिक विकारों से बचा सकते हैं ।

- माँ-बाप को चाहिए कि उन्हें ज़्यादा से ज़्यादा हर काम के प्रति उत्साहित करें, उनका मनोबल बढ़ायें। उन्हें समझाएं कि तुम किसी से कम नहीं हो। तुम हर काम कर सकते हो। उनको खुद की पहचान करनी सिखाएं।
- उनके साथ खेलें, खेल-खेल में नए-नए शब्दों का प्रयोग करें, खिलौनों के साथ खेलने का सही तरीका सिखाएँ, बारी-बारी से खेलने की आदत डालें। *(शेष पृष्ठ 22 पर)*

गर्भवती महिला का आहार

✍ **अमृत चावला, वीना जैन एवं आशा बत्तरा**
कृषि विज्ञान केन्द्र, भिवानी
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

प्रत्येक मां की इच्छा होती है कि उसका शिशु स्वस्थ व सुन्दर हो। स्वस्थ बच्चे को जन्म देने के लिए मां का स्वस्थ होना ज़रूरी है। जैसे ही किसी महिला को पता चले कि वह मां बनने वाली है तो उसे प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र में जांच करवाने के लिए जाना चाहिए।

अगर गर्भवती महिला को उचित आहार मिले तो गर्भावस्था में उसका भार 10-12 किलो बढ़ जाता है। जो स्त्रियां गर्भावस्था में उचित आहार नहीं ले पातीं, उनके बच्चों का जन्म के समय का भार संतुलित भोजन लेने वाली स्त्रियों के बच्चों के औसत भार से कम होता है।

गर्भवती महिला का आहार कैसा हो ?

गर्भावस्था के दौरान महिला को कैलोरी, प्रोटीन, कैल्शियम, विटामिन, खनिज एवं लौह तत्व की अतिरिक्त ज़रूरत होती है। गर्भवती स्त्री को अपने प्रतिदिन के भोजन में अतिरिक्त मात्रा में अनाज, दालें, दूध, हरी पत्तेदार सब्जियां, अन्य सब्जियां, सूखे मेवे, मूंगफली, तिल आदि काफी मात्रा में लेने चाहिएं।

गेहूं, बाजरा, चावल, मक्का आदि मिले-जुले अनाजों का प्रयोग करना चाहिए। अनाज से शक्ति तथा प्रोटीन के अतिरिक्त लोहा भी मिलता है। अनाज की तरह दालें भी कई प्रकार की होती हैं जैसे चना, मूंग, अरहर, उड़द आदि जोकि प्रोटीन से भरपूर हैं। दालों को साधारण ढंग से पकाने की अपेक्षा अंकुरित करके प्रयोग करें क्योंकि ये अधिक पौष्टिक व पाचनशील होती हैं।

गर्भवती स्त्री को अपने आहार में हरी पत्तेदार सब्जियां जैसे पालक, चौलाई, मेथी,सरसों,धनिया का प्रयोग दिन में कम से कम एक बार अवश्य करना चाहिए। सर्दियों मे हरी सब्जियां काफी मात्रा में मिलती हैं इन्हें सुखा कर रखें व गर्मियों में प्रयोग करें।

घीया, आलू, भिण्डी, तोरी आदि भी प्रयोग करनी चाहिए। लाल व पीले रंग की सब्जियां जैसे पेठा, टमाटर, गाजर प्रयोग करें क्योंकि ये आंखों के लिए गुणकारी हैं क्योंकि इनमें विटामिन 'ए' काफी मात्रा में पाया जाता है।

केला, पपीता, अमरूद, बेर आदि फल सस्ते और पौष्टिक हैं, जहां तक सम्भव हो इन्हें अपने आहार में शामिल करें।

दूध व दूध से बने पदार्थ जैसे दही, लस्सी व पनीर पौष्टिक तत्वों से भरपूर हैं। गर्भवती के आहार में चीनी, गुड़, तेल व घी स्वाद के साथ-2 शक्ति भी प्रदान करते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि गुड़, चीनी से अधिक लाभदायक है, क्योंकि इसमें लोहा पाया जाता है।

ध्यान देने योग्य बातें:-

- आहार में मिर्च-मसालों का प्रयोग न करें। चटनी, अचार का प्रयोग भी कम करें।
- सन्तुलित आहार के साथ अधिक मात्रा में पानी व तरल पदार्थो का प्रयोग करें।

- भोजन थोड़ा-थोड़ा और कई बार लें।
- आयोडीन युक्त नमक का प्रयोग करें।
- भरपूर नींद व आराम लेना चाहिए। खुश व सन्तुष्ट रहना चाहिए।

गर्भवती महिला की एक दिन की आहार तालिका नीचे दी गई है:-

समय	आहार
6.00 बजे प्रात:	एक गिलास दूध/चाय, बिस्कुट
नाश्ता (8-9 बजे)	दो मिस्सी रोटी, एक कटोरी दही
मध्य दोपहर (10-11बजे)	मौसमी फल (केला,पपीता)/नींबू का शरबत
दोपहर (1 बजे)	चार रोटी, 1 कटोरी सब्जी,1 कटोरी दाल, टमाटर व खीरा का सलाद
तीसरे पहर (4 बजे)	पौष्टिक पंजीरी/लड्डू, दूध/चाय
शाम (7 बजे)	चार रोटी, पेठा सब्जी, अंकुरित दाल, सलाद
सोने पूर्व (9 बजे)	एक गिलास दूध

अंत मे यह कहना आवश्यक है कि गर्भवती महिला को अपने व अपने आने वाले बच्चे के लिए संतुलित भोजन का सेवन प्रतिदिन निश्चित समय पर करना चाहिए।

आवश्यक सूचना

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार स्थित किसान सेवा केन्द्र में किसानों हेतु सप्ताह में तीन दिन सोमवार, बुधवार एवं शुक्रवार को 10 से 12 बजे तक नि:शुल्क फोन सुविधा (हैल्प लाइन) फोन नं. 1800-180-3001 पर उपलब्ध है जिसमें वैज्ञानिकों से कृषि-संबंधी परामर्श किया जा सकता है। यदि किसी जगह से यह फोन सुविधा उपलब्ध नहीं हो तो किसान भाई 01662-232768 पर सशुल्क फोन करके उपर्युक्त दिनों में इस सुविधा का लाभ उठा सकते हैं।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल में भी सोमवार, बुधवार, शुक्रवार 10 से 12 बजे तक फोन नं. 1800-180-4002 पर यह नि:शुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, ऊचानी (करनाल) में भी मंगलवार व बृहस्पतिवार 10 से 11 बजे तक फोन नं. 1800-180-3111 पर यह नि:शुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

स्वच्छता – रखे रोगमुक्त

✍ **कुसुम राणा, बी. पी. राणा एवं सुमन मलिक**
कृषि विज्ञान केन्द्र, झज्जर
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भोजन मानव शरीर के लिये अति आवश्यक तत्व है। भोजन सम्बन्धी स्वच्छता अतिआवश्यक होने के साथ-साथ आहार संबधी संदुषण के रोकथाम में परम सहायक है। भोजन में विषाक्तता आम तौर पर गंभीर नहीं होती परंतु कभी-कभी गंभीर हो जाती है। दो सौ से अधिक बीमारियाँ दूषित जल व खाने से होती हैं तथा प्रतिवर्ष लाखों बच्चे उल्टी व दस्त जैसी बीमारियों से मृत्यु को प्राप्त होते हैं। खाना बनाने व उनके भण्डारण में निम्नलिखित सावधनियां बरतकर हम रोग मुक्त जीवन जी सकते हैं।

1. अपने हाथों को खाना बनाने से पहले व बाद में, शौच के बाद, सफाई करने के बाद साबुन व स्वच्छ पानी से करीब 20 सेकेंड तक इस प्रकार धोयें कि हाथों से गंदे कीटाणु हमारे खाने में प्रवेश न कर पायें ।
2. सब्जी काटते व खाना बनाते समय ध्यान रखें कि आपके हाथ कहीं से कटे न हों व उनपर घाव न हो। ऐसी अवस्था में साफ तथा पानी रहित पट्टी लगाकर रखें ।
3. खाना बनाते समय छींकें व खांसें नहीं, ऐसी अवस्था में मुंह को ढक लें तथा हाथों को तुरंत धो लेवें ताकि इंफेक्शन न फैल सके।
4. इन विशेष बीमारियों जैसे पीलिया, उल्टी, दस्त,बुखार, गला खराब, आखों से पानी निकलने की अवस्था में खाना न बनायें इससे इंफेक्शन खाने वालों को लग सकता है ।
5. खाना बनाते समय रिमोट व मोबाईल का इस्तेमाल न करें। इन उपकरणों पर लगे कीटाणु खाने में प्रवेश कर सकते हैं।
6. नाखुनों को सदैव छोटा व साफ रखें। अगर खाना बना रहे हैं तो नेलपालिश का इस्तेमाल नाखूनों पर न करें इससे आपका खाना प्रदूषित हो सकता है ।
7. खाना बनाते समय साफ कपड़े पहनें व हाथों में आभूषण व खास करके अंगूठियाँ जब आप आटा गूंथ रहे हों, न पहनें।
8. रसोईघर में इस्तेमाल होने वाले कपड़ों को प्रतिदिन धोकर धूप में सुखायें। बरतन धोने के जूने को साबुन के घोल में डुबोकर न रखें। इसे बरतन धोने के बाद साफ पानी से धोकर धूप में रख दें।
9. गर्मियों के मौसम में खाना जल्दी खराब हो जाता है। खाना खराब होने की आशंका होने पर उसे तुरंत फेंक दें। खाना चैक करने के लिये थोड़ा सा भी प्रदूषित खाना, खाने से यह शरीर को नुकसान पहुँचा सकता है।
10. रसोईघर की दीवारों, अलमारी, भोजन का भण्डारण करने वाली जगह को दो सप्ताह में एक बार अवश्य गर्म पानी व साबुन से साफ करें। कूड़ादान को प्रतिदिन खाली करके अच्छी तरह से साफ करके रखें।
11. खाने को पैक करने के लिये कभी भी अखबार, कागज़ व प्लास्टिक का प्रयोग न करें। स्टेन लैस स्टील अथवा अच्छी क्वालिटी के प्लास्टिक में ही टिफिन पैक करें । *(शेष पृष्ठ 22 पर)*

आलू : मूल्य संवर्धन एवं फसलोपरांत प्रबंधन

✍ **कनिका पंवार एवं इंदु पांचाल**[1]
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, करनाल
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

गैर अनाज खाद्य फसलों में आलू का स्थान गेहूं, चावल और मक्का के बाद दुनिया में चौथे नंबर पर है। भारतीय आहार में आलू सबसे लोकप्रिय खाद्य पदार्थ माना जाता है एवं भारत देश आलू के सबसे बड़े उत्पादकों में से एक है। इसका उपयोग कई तरह से किया जाता है जैसे कि सब्जी, आलू वेफर्स/चिप्स पाऊडर, फिंगर चिप्स आदि। आलू कंद एक अत्यधिक पौष्टिक भोजन है। यह कार्बोहाइड्रेट, विटामिन सी, खनिज, उच्च गुणवत्ता वाले प्रोटीन व फाइबर आहार प्रदान करता है। आलू स्टार्च का एक समृद्ध स्रोत है और इसका मुख्य रूप से सेवन अधिक कैलोरी मान होने के कारण किया जाता है। इसमें फॉस्फोरस, कैल्शियम, आयरन और कुछ विटामिन भी होते हैं। आलू उबालने से उनकी प्रोटीन की मात्रा बढ़ जाती है व कैल्शियम की मात्रा भी लगभग दोगुनी हो जाती है।

आलू का उपयोग सब्जी के रूप में किया जाता है व इसका उपयोग विभिन्न रूपों जैसे स्टार्च, आटा, शराब, डेक्सट्रिन व पशुधन चारा बनाने के लिए भी किया जाता है। यह अनुमान है कि लगभग 25% आलू जो कई कारणों से खराब हो जाता है प्रसंस्करण और संरक्षण की विधि द्वारा विभिन्न प्रकार के प्रसंस्कृत उत्पादों के निर्माण से सुरक्षित किया जा सकता है। आलू को वेफर्स/चिप्स, पाऊडर, फ्लेक्स, ग्रैन्यूल्स, कैनिंग स्लाइस के रूप में संरक्षण और मूल्य संवर्धन के लिए संसाधित किया जाता है। आलू के ग्रैन्यूल्स का उपयोग विभिन्न व्यंजनों की तैयारी के लिए किया जाता है व सब्जी और गैर–व्यंजनों को बनाने एवं खाद्य मूल्य को समृद्ध करने के लिए भी इसका प्रयोग करते हैं। आलू के प्रति 100 ग्राम पोषक तत्वों में पानी, ऊर्जा, प्रोटीन, वसा एवं कार्बोहाइड्रेट की 79 ग्राम, 322 किलोजूल, 2 ग्राम, 0±09 ग्रा. व 17 ग्राम मात्रा होती है तथा आलू में कैल्शियम 12 मि. ग्रा., आयरन 0–78 मि.ग्रा., फॉस्फोरस 57 मि.ग्रा. व विटामिन सी 19–7 मि.ग्रा. होता है।

आलू के संभावित मूल्य वर्धित उत्पाद : भारत में आलू एक बहुत ही लोकप्रिय पारंपरिक मूल भोजन है। कई मूल्यवर्धित उत्पादों को भारतीय आहार में भी शामिल किया गया है। आलू की सब्जी, बटाटा वड़ा और समोसा उन में से एक है। आलू का प्रयोग फास्ट फूड आइटम जैसे कि आलू की चाट के रूप में एक प्रमुख रूप से किया जाता है। उत्तरी भारत में दम आलू व आलू का पराठा एक पसंदीदा आहार है। दक्षिण भारत में मसाला डोसा नामक व्यंजन पूरे भारत में बहुत उल्लेखनीय है। दक्षिण भारत में खास तौर पर तमिलनाडू में पूड़ी का सेवन मसालेदार आलू के साथ किया जाता है। अन्य पसंदीदा व्यंजन हैं आलू टिक्की और आलू का पकोड़ा। वड़ा पाव भारत में मुंबई और महाराष्ट्र के अन्य क्षेत्रों में एक लोकप्रिय शाकाहारी फास्ट फूड व्यंजन है। आलू पोस्तो (आलू और खसखस के साथ एक सब्जी) पूर्वी भारत, खासकर बंगाल में बहुत लोकप्रिय है। हालांकि आलू भारत का मूल निवासी नहीं है, लेकिन यह पूरे देश में खासतौर पर उत्तर भारतीय भोजन की तैयारी का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया है। आलू के अन्य उत्पादों में फ्रेंच फ्राइज़, चिप्स और सनेक्स, निर्जलित आलू उत्पाद, आलू स्टार्च और अन्य आलू उत्पाद शामिल हैं।

मनुष्यों द्वारा खाने के अलावा आलू का उपयोग : आलू का उपयोग अल्कोहलयुक्त पेय जैसे वोडका, पोइटिन या अक्विविट का उपयोग करने के लिए किया जाता है। उनका उपयोग पशुओं के चारे के रूप में भी किया जाता है। पशुधन–श्रेणी के आलू जो बहुत छोटे आकर व धब्बे से युक्त होने की वजह से व जिन्हें मानव उपयोग के लिए बेचा नहीं जा सकता लेकिन चारे के उपयोग के लिए उपयुक्त माना जाता है, उन आलुओं को पशुओं के लिए चाट के रूप में इस्तेमाल करते हैं। उपयोग करने तक उन्हें डिब्बे में संग्रहीत किया जाता है। कुछ किसान आलुओं को कच्चा खिलाने के बजाय उन्हें भाप कर देना पसंद करते हैं। आलू के स्टार्च का उपयोग खाद्य उद्योग में सूप और सॉस के लिए थिकनेर व बाइंडर के रूप में, कपड़ा उद्योग में एक चिपकने वाले पदार्थ के रूप में और पेपर व बोर्ड बनाने में इसका प्रयोग किया जाता है। काफी कंपनियां प्लास्टिक उत्पादों में उपयोग के लिए अपशिष्ट आलू का इस्तेमाल पोलीलैक्टिक एसिड प्राप्त करने की संभावनाएं तलाश रही हैं। अन्य शोध परियोजनाएं बायोडिग्रेडेबल पैकेजिंग के आधार के रूप में आलू के स्टार्च का उपयोग करने के तरीकों को भी तलाश रही हैं। भारत में आलू की खाल को शहद के साथ लगाने से जले हुए को ठीक करने का उपचार किया जाता है। भारत में बर्न सेंटर ने उपचार करते समय जलने से बचाने के लिए आलू की पतली बाहरी त्वचा की परत का उपयोग किया है।

आलू का फसलोपरांत प्रबंधन : आलू में फसल के बाद के नुकसान का प्रबंधन करने के लिए कई चरणों का ध्यान रखना करना ज़रूरी है। कटाई से पहले का ऑपरेशन सही तरीके से करना व समय पर रसायन लगाकर फसल को रोग मुक्त किया जाना चाहिए। आलू की कटाई के बाद के प्रबंधन के लिए गुणात्मक और मात्रात्मक नुकसान को कम किया जाना चाहिए व उचित देखभाल के माध्यम से उपायों को अपनाना चाहिए। फसल की कटाई तथा खाद्य फसल को नुकसान से बचाने के लिए तैयार किए गए उपकरणों के साथ कटाई की जानी चाहिए। छंटाई और ग्रेडिंग समझदारी से की जानी चाहिए। भंडारण विशेष तापमान और आर्द्रता पर किया जाना चाहिए। अधिकतम आलू सीज़न के दौरान अंतराल से बचने के लिए विपणन उचित समय पर करना ज़रूरी है। प्रसंस्करण के लिए आलू के इस्तेमाल हेतु उनका पूर्व निर्धारण किया जाना चाहिए। आलू के उचित प्रबंधन के लिए इन उपरोक्त कदमों का ध्यान रखना आवश्यक है।

आलू के मूल्य संवर्धन से किसान सशक्तिकरण : किसानों को सशक्त बनाने के लिए उन आलू की किस्मों को बढ़ावा देने की आवश्यकता है जो उत्पाद विकास को सबसे ज़्यादा बढ़ाने में मुख्य भूमिका निभाती हों। आलू कम लागत वाली सब्जी की फसल है, इस प्रकार मूल्यवर्धन को

(शेष पृष्ठ 26 पर)

[1]ला. ला. रा. पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार।

पशुओं में रेबीज़ रोग : एक घातक बीमारी

✍ गौरी चंद्रात्रे, मनीश शर्मा एवं के. के. जाखड़
पशुचिकित्सा रोग विज्ञान विभाग
ला. ला. रा. पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

रेबीज़ एक भयानक व घातक रोग है जो विषाणु के कारण होता है। यह रोग मुख्यत: मांस खाने वाले पशुओं जैसे कि पागल कुत्ते, गीदड़, भेड़िये आदि में होता है। दूसरे पशुओं में यह रोग पागल कुत्ते, गीदड़, भेड़िये व नेवले के काटने से होता है। इस रोग को लेयासा व हाईड्रोफोबिया (hydrophobia–पानी का डर) के नाम से भी जाना जाता है। यह रोग मनुष्य के साथ–साथ सारे पशुओं में भी पाया जाता है। जैसे गाय, भैंस, भेड़, बकरी, घोड़े, ऊंट एवं अन्य जीव भी इस रोग की चपेट में आकर मरते हैं। जिससे पशुपालकों में आर्थिक हानि होती है।

रेबीज़ का संक्रमण : पागल कुत्ते के काटने पर रोग के विषाणु पशु के शरीर में प्रवेश करते हैं और स्नायु तंत्र के द्वारा धीरे–धीरे मस्तिष्क में पहुँच जाते हैं तथा उसे प्रभावित करते हैं।

रेबीज़ के लक्षण :

कुत्तों में लक्षण

मूक अवस्था– कोने में बैठे रहना, लकवा हो जाना, मास्टर को न पहचानना व निर्देश न मानना, नीचे का जबड़ा लटकना व मुंह से लार टपकना तथा कुछ ही दिन के अंदर मृत्यु हो जाना।

उग्र अवस्था– चिड़चिड़ा हो जाना तथा लकड़ी, पत्थर ईंट आदि को काटने लगना। इधर–उधर दौड़ना। कुत्ता काटने को आने लगता है। मुंह से लार टपकने लगती है। पशु की मृत्यु हो जाती है। पीड़ित कुत्ते की खाली नज़र व न दिखाई देने वाली वस्तुओं पर बदली हुई आवाज़ में भौंकना।

अन्य पशुओं में रेबीज़ के लक्षण

1. पशुओं में उग्रता, पागलपन, लकवा तथा मृत्यु हो जाना।
2. पानी से डर का लक्षण नहीं होना।
3. गायों के मुंह से लार उत्पन्न होना।
4. पिछली टाँगें कमज़ोर होना।
5. घोड़े में पागलपन के साथ–साथ पेट दर्द होना।
6. गायें एवं भैंस लगातार रम्भाती हैं परन्तु आवाज़ बदल जाती है।
7. रोगी पशु दीवार एवं वृक्ष आदि से टक्कर मारने लगते हैं।
8. जंगली जानवर में भी इसी प्रकार के लक्षण दिखते हैं।

रोग से बचाव

1. कुत्ते के काटने पर तुरंत काटे गये स्थान पर साफ पानी डालें और 15–20 मिनट तक धोएं।
2. साबुन से घाव की सफाई की जानी चाहिए।
3. घाव पर रोगाणुरोधक (एंटीसेप्टिक) दवा लगाएं।
4. पालतू कुत्तों का रेबीज़ से बचाव के लिए प्रतिवर्ष टीका लगवाना चाहिए।
5. पालतू जानवर अगर दूसरे जानवर को काटता है तो पालतू जानवर की पशुचिकित्सक से तुरंत जांच करवानी चाहिए।
6. प्रभावित पशु व दूसरे काटने वाले पशुओं को दस दिन निगरानी में रखना चाहिए।
7. प्रभावित जानवर को दूसरे पशुओं से अलग रखना चाहिए।
8. दूध देने वाले पशुओं में रेबीज़ होने पर बीमारी के विषाणु दूध में आ सकते हैं इसलिए ऐसे दूध का प्रयोग न करें।

रोकथाम

1. कुत्ते व बिल्लियों का टीकाकरण करवाएँ।
2. पालतू पशुओं को आवारा कुत्तों से दूर रखें।
3. घर के बाहर गंदगी व खाना न छोड़ें इससे जंगली जानवर आकर्षित होते हैं।
4. यदि किसी जानवर में असामान्य लक्षण दिखते हैं तो पशुचिकित्सक विभाग को सूचित करें।
5. रेबीज़ रोग हो जाने पर उपचार असंभव है इसलिये इससे बचाव के लिए पूरी सावधानियां प्रयोग में लायें।

(*पृष्ठ 20 का शेष*)

12. गैस चूल्हे की पाईप पर खाने का सामान व घी लग जाता है जिस पर कीड़े–मकोड़े आ जाते हैं। पाईप को 15 दिन में एक बार बिना निकाले ऊपर से साबुन के पानी से धो दें व एक साल बाद पाईप अवश्य बदल दें।

इन विशेष बातों का ध्यान रखकर आप स्वयं व परिवार को रोगमुक्त स्वस्थ व खुशहाल रख सकते हैं।

(*पृष्ठ 19 का शेष*)

धीरे–धीरे खेल में बच्चों की संख्या को बढ़ाया जाये, जिससे बच्चा दूसरे बच्चों के साथ भी बोलना, बतलाना और अच्छे से व्यवहार करना सीख जायेगा ।

- उनके साथ बिल्कुल प्यार से बातें करें, थोड़ा–सा धैर्य रखना सिखाएं। घर के अलावा अन्य लोगों से मिलने का मौका दें, बच्चों को तनाव मुक्त स्थानों जैसे कि पार्क में ले कर जायें, तथा उसके किसी भी प्रयत्न को प्रोत्साहित करना न भूलें ।
- यदि बच्चा कोई एक व्यवहार बार–बार करता है तो उसे रोकने के लिए उस से कुछ ऐसी गतिविधियां कराई जाएं, जो उसे व्यस्त रखें ताकि वह व्यवहार दोहरा न सके, एक ही गतिविधि या व्यवहार को बार –बार न करने पर उसे तुरंत शाबाशी दें, और ध्यान खींचने वाली चीज़ों का इस्तेमाल करें।
- गुस्सा या अधिक चंचलता के लिए बच्चे को अपनी शक्ति को इस्तेमाल करने के लिए सही मार्ग दिखाएँ जैसे कि उसे व्यायाम करवाना, दौड़ना, तथा बाहरी खेलों में लगाएं, यदि परेशानी अधिक हो तो प्रशिक्षित, विशेष अध्यापक से सम्पर्क करें। प्रशिक्षण व परामर्श के द्वारा बच्चों को बहुत कुछ सिखाया जा सकता है।

पशुओं मे पेशाब के रुकने (यूरोलिथियासिस) की समस्या : कारण, उपचार व बचाव के उपाय

✍ प्रियंका[1], सतबीर शर्मा एवं प्रिया[2]
पशु शल्य चिकित्सा एवं रेडियोलोजी विभाग
ला. ला. रा. पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

मवेशी, भेड़ और बकरियों में पेशाब का रुकना आम बात है। यह छोटी आयु के जानवरों की एक महत्वपूर्ण बीमारी है लेकिन परिपक्व जानवरों में भी देखी जाती है। यह समस्या शरीर में पथरी (यूरोलिथ) बनने के कारण होती है। पथरी (यूरोलिथ) मूत्र पथ के भीतर कहीं भी पाई जा सकती हैं और पेशाब की रुकावट का कारण बनती है। यह अक्सर सर्दी के मौसम में होती है।

कारण :

1. यह मुख्य रूप से पोषण संबंधी बीमारी है।
2. पानी में उच्च खनिज पदार्थों जैसे मैग्नीशियम की अधिकता और आहार में कैल्शियम व फॉस्फोरस का सही अनुपात (2:1) में न होना।
3. पशु को राशन में अनाज (grain) की मात्रा ज़्यादा और चारा (roughage) कम देना।
4. सर्दी के मौसम में जानवर का कम पानी पीना।
5. यह समस्या ज़्यादातर नर में पाई जाती है, क्योंकि शारीरिक रूप से नर का मूत्रमार्ग 'S' आकृति का होने के कारण पथरी उस स्थान पर फंस जाती है और रुकावट का कारण बनती है।

लक्षण

1. यूरोलिथियासिस का प्रसार कम उम्र (3–4 महीने) के बछड़े, कटड़े व भेड़ के बच्चों में सबसे ज़्यादा होता है।
2. शुरूआती लक्षण : पशु का बार–बार और कम मात्रा में पेशाब का करना।
3. पशु बेचैन हो जाता है और बार–बार पेट पर पैर मारता है।
4. पशु पेशाब करते समय काफी देर तक झुका रहता है व पूंछ को ऊपर उठा के रखता है।
5. आंशिक मूत्रमार्ग बाधा से कई बार पता लगाने योग्य खनिज पूर्ववर्त्ती ग्रंथि के बालों पर जमा हो जाते हैं जिस से पेशाब की रुकावट का कारण पता लगाया जा सकता है।
6. पेशाब का पूरी तरह से रुक जाने पर मूत्राशय यानी पेशाब की थैली फट जाती है और पशु का पेट सामान्य से काफी फूला हुआ दिखता है।
7. शरीर में पानी की कमी से आँखों का अंदर धंसना।
8. पूर्ण मूत्रमार्ग बाधा से मूत्रमार्ग छिद्रण, हाइड्रोनफ्रोसिस या मूत्राशय फटने की सम्भावना बढ़ जाती है।
9. मूत्रमार्ग छिद्रण से पेट की त्वचा गल जाती है और समय पर इलाज न होने से पशु की यूरिमिया (uremia) से मौत भी हो सकती है।

उपचार

1. शुरुआती लक्षण में एंटीस्पाज्मोडिक्स और ट्रांक्विलाइज़र का उपयोग करके रूढ़िवादी थेरेपी से पशु को लाभ होता है। अधिकांश जानवरों में राहत आमतौर पर अस्थायी (<2 दिन) होती है, क्योंकि एक से अधिक पथरी की उपस्थिति के कारण पेशाब की रुकावट दोबारा हो जाती है।
2. कई मामलों में, बाधा का शल्य चिकित्सा प्रबंधन व तरल पदार्थ और इलेक्ट्रोलाइट असंतुलन को सुधारना आवश्यक होता है।
3. ट्यूब सिस्टोसटोमी आपरेशन से पशु को तुरन्त आराम मिलता है। यह बहुत ही आम, सफल और प्रचलित तकनीक है जो कि सरकारी अस्पताल में कम औज़ारों की सहायता से की जा सकती है।
4. अमोनियम क्लोराइड (नोशादर) का उपयोग 7–10 ग्राम प्रति पशु प्रति दिन हर 40–50 किलोग्राम तक के बच्चे के लिए किया जा सकता है जो खनिज घुलनशीलता को बढ़ाता है।

बचाव

1. मूत्रमार्ग पथरी के गठन को कम करने के लिए कुल राशन के 2% तक सोडियम क्लोराइड (नमक) मिलाना चाहिए। यह पानी का सेवन और पेशाब की वृद्धि करता है।
2. राशन में हरे चारे की मात्रा को बढ़ाकर और खल की मात्रा को कम कर देना चाहिए।
3. पशुओं के लिए हर समय उचित पानी की व्यवस्था होनी चाहिए।
4. शुरुआती लक्षण दिखने पर तत्काल पशु–चिकित्सक की सहायता लेनी चाहिए क्योंकि इलाज में देरी से पशु की मौत भी हो सकती है।

पेशाब की थैली फटने से पेट में फुलावट होना

पथरी का preputial बालो पर जमा होना

[1]पशु चिकित्सक, पशु पालन एवं डेयरी विभाग, हरियाणा।
[2]पशुधन उत्पादन एवं प्रबंधन विभाग, गुरू अंगद देव पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, लुधियाना।

जन संचार माध्यमों का बदलता स्वरूप

✍ **प्रदीप कुमार चहल, भरत सिंह घणघस एवं राजेश कुमार**[1]

विस्तार शिक्षा निदेशालय

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

मनुष्य अपने मन के भावों को दूसरों तक पहुंचाने के लिए अनेक साधनों का प्रयोग आदिकाल से करता आया है। इन साधनों में समय के साथ-साथ अनेक परिवर्तन भी आते रहे हैं। पुराने संचार माध्यमों के स्थान पर विज्ञान और तकनीकी में हो रही सतत प्रगति का प्रभाव जन संचार माध्यमों पर भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इन संचार माध्यमों को हम दो भागों में बांट सकते हैं 1. लोक माध्यम; एवं 2. आधुनिक तकनीक माध्यम।

इससे पहले कि हम ज्ञान बढाएं यह जानना ज़रूरी है कि लोक क्या है लोक माध्यम क्या है और लोक माध्यमों का विकास किस प्रकार हुआ तथा जन संचार की आधुनिक तकनीक क्या है ?

लोक शब्द का अर्थ साधारणत: जन सामान्य या आम आदमी होता है अंग्रेज़ी के शब्द फोक का हिन्दी अनुवाद लोक के रूप में स्वीकृत कर लिया गया है। लोकशब्द का प्रयोग इहलोक, परलोक, त्रिलोक आदि के अर्थ में भी किया जाता है। जहां तक लोक माध्यम की परिभाषा का प्रश्न है संचार का वह माध्यम जिसकी पहुंच आम जनमानस तक हो उसे लोक माध्यम कहते हैं। वैसे माध्यम शब्द को अनेक अर्थों में प्रयोग किया जाता है परन्तु यहां हम इसका अर्थ लोगों तक सूचना पहुंचाने या मनोरंजन के पारम्परिक साधनों की जानकारी प्राप्त करने के साधन के रूप में लेते हैं। डा. त्रिलोकचन्द पांडेय के अनुसार लोकमाध्यम न केवल संवेदनाओं, जीवन पद्धतियों और जीवन दर्शन की झलक दिखलाते हैं अपितु साथ ही जनमानस को आवश्यक निर्देश देते हैं तथा प्रेरणा स्त्रोत भी होते हैं।

यदि हम इस विषय पर गौर करें कि लोक माध्यमों का विकास किस प्रकार हुआ तो यह कहना उचित रहेगा कि लोक माध्यमों का विकास एक क्रमिक प्रक्रिया है। ये लोक माध्यम न केवल लोगों के समूह को सूचना देने में सफल रहे हैं वास्तव में ये लोगों के मन, कर्म और वचन को भी प्रभावित करते रहे हैं। यदि हरियाणा के संदर्भ में बात करें तो सांग (स्वाँग), रामलीला, रासलीला, भजन, उपदेश, तथा रागनी प्रतियोगिताएं जन संचार के प्रमुख लोक माध्यम रहे हैं जिनमें समयानुसार परिवर्तन के साथ वर्तमान में भी प्रचलित हैं। सांग के माध्यम से समाज में दया, क्षमा, दानशीलता, करुणा, उदारता, भक्ति, वीरता, तपस्या, कला तथा प्रेम इत्यादि दर्शकों को मिलते हैं। सांग में जन संचार के सभी तत्व मौजूद रहते हैं।

रामलीला के माध्यम से भगवान राम के त्याग, तपस्या, वीरता व न्यायप्रियता का परिचय तथा असत्य व अहंकार को नष्ट करने की शिक्षा प्राप्त होती है। रासलीला के माध्यम से अर्जुन का मोहभंग कर कर्मयोग का संदेश तथा धर्म की रक्षा हेतु सर्वस्व अर्पण कर देने की प्रेरणा मिलती रही है। लोक नृत्य भी जन संचार का सशक्त माध्यम रहे हैं खोड़िया, लहुर, बोकड़ा, खेड्डा, घोड़ी बाजा, घौंस्सा नृत्य आदि महिलाओं के परम्परागत मनोरंजन के साधन रहे हैं। इसी प्रकार रीछ का तमाशा, बन्दर-बन्दरिया का तमाशा, नट व बादी के करतब भण्डेलों बहूरूपियों का किन्नरों के प्रदर्शन भी प्रचलित रहे हैं।

प्रतीकों को भी जन संचार के माध्यम के रूप में इस्तेमाल किया जाता रहा है। जैसे स्वास्तिक या सतिए को धार्मिक कार्यों के प्रारंभ में अंकित करना वास्तव में ब्रह्मा जी के सत्य, अंहिसा, तप, दया तथा सभी दिशाओं की समृद्धि एवं विजय का प्रतीक माना जाता है। दीवारों पर बनाए गए थापे विवाह, पुत्रजन्म, स्वास्थ्य रक्षा आदि के प्रतीक होते हैं जबकि बैठक की छत में लगे कड़े में लटकी फूलझड़ी घर में नववधू के आगमन तथा मुख्यद्वार पर बंधी नीम या पीपल के पत्तों की बन्दनवार पुत्र जन्म या शुभ कार्य के सम्पन्न होने को दर्शाती है।

मुख्यद्वार की चौखट के साथ टंगा लकड़ी की अर्ध-गोलाकार तख्ती में हाथी, घोड़े गाय आदि की आकृतियुक्त तोरण लड़की के विवाह की सूचना देता है।

संस्कारों में भी जन संचार करने के कई तरीके प्रयोग में लाए जाते हैं जैसे पुरुष की मृत्यु हो जाने पर खाट (चारपाई) की पाँत ऊपर की तरफ करके खड़ी कर देना, पूरा गोस्सा (उपला) सुलगाकर रखना, स्त्री की मृत्यु हो जाने पर मटका मूंधा (उल्टा) रखना या मटके के ढक्कन में आटा रखकर उसमें एक रोटी की लोई बनाकर रखना। पहनावे में भी जनसंचार होता है : सफेद कोट - डाक्टर, काला कोट - वकील, फौजी की वर्दी व कंधे पर स्टार, पुलिस की वर्दी व स्टार, पायलेट, एयर होस्टस, नर्स, महिलाओं के गले का मंगलसूत्र, बुरका और टोपी विभिन्न देशों के झण्डे, धर्मों व सम्प्रदायों के झण्डे तथा अलग-अलग देवी-देवताओं के झण्डे हरियाणा में तो अब प्रत्येक राजनैतिक पार्टी के नेताओं व कार्यकर्त्ताओं ने पगड़ी के रंग को ही अपना पहचान (ट्रेड मार्क) बना लिया है। इसी प्रकार रंगों में भी जनसंचार होता है जैसे सड़क पर हरी बत्ती, पीली बत्ती व लाल बत्ती, तथा रेल के लिए हरी झण्डी व लाल झण्डी का विशेष महत्व है तो आवाज़ या वाद्य यन्त्रों की आवाज़ भी जन संचार करती हैं। मन्दिर का शंख, एम्बूलैंस का सायरन, फायर ब्रिगेड की घन्टी, रेल की सीटी, गाड़ी का हॉर्न, विवाह में शहनाई, इत्यादि।

बीसवीं शताब्दी में 'रेडियो व दूरदर्शन' संचार के सबसे महत्वपूर्ण साधन रहे तथा भारत में हरित क्रान्ति और कृषि तकनीक के प्रचार प्रसार में रेडियो ने अहम भूमिका निभाई। रेडियो कम से कम समय में कम से कम खर्च पर अधिक से अधिक जानकारी अधिक से अधिक लोगों तक पहुंचाने में सफलता प्राप्त करते हुए अपने आदर्श वाक्य बहुजन हिताय-बहुजन सुखाय को चरितार्थ करता रहा है तथा स्थानीय बोलियों में इसके प्रसारण अत्यन्त लोकप्रिय रहे हैं। दूरदर्शन भारतीय संस्कृति खेल, कृषि तथा संगीत को जन-जन तक दृश्यों के माध्यम से पहुंचाता रहा है। आकाशवाणी व दूरदर्शन की विश्वसनीयता आज भी नि:संदेह है। समाचार पत्र भी सूचना प्रदान करने का सशक्त और विश्वसनीय माध्यम हैं।

(*शेष पृष्ठ 27 पर*)

[1]डी.टी.पी. ऑपरेटर, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

समाज में मीडिया एवं सोशल मीडिया : सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभाव

✍ **जतेश काठपालिया, सुभाष चन्द्र एवं रश्मि त्यागी**
समाज शास्त्र विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

मीडिया आज के दौर में ज़िन्दगी का सबसे ज़रूरी हिस्सा बन गया है। बिना मीडिया के मानव सभ्यता का विकास सम्भव नहीं है, ऐसा माना जाने लगा है, इसमें सोशल मीडिया सबसे प्रमुख बन गया है। आज समाज का हर तबका इससे सीधे जुड़ा है।

आज़ादी से पहले अंग्रेज़ी शासन के नियन्त्रण में रेडिया प्रसारण का प्रारम्भ हुआ। आज़ादी मिलने के बाद मीडिया का एक नया दौर शुरू हुआ। यह दौर लगभग अस्सी के दशक तक चला। इस दौर में रेडियो के साथ-साथ टेलीविज़न, अखबार, पत्र-पत्रिकाएं बड़े पैमाने पर उभर कर आए। आज़ादी के बाद राष्ट्रीय स्तर पर एक राष्ट्रवाद की सहमति बनाने का लक्ष्य मीडिया के केन्द्र में था। मीडिया कहीं न कहीं लोगों में विश्वास का संचार करने में कामयाब रहा। अखबार, पत्रिकाओं में प्रकाशित विचार और समाचार को सत्य, निष्पक्ष और स्वीकार्य के रूप में देखा जाता था। इसी तरह रेडियो और दूरदर्शन (प्राइवेट चैनलों का उदय नहीं हुआ था) से प्रसारित समाचार और विचार को भी सच और उपयोगी मानकर स्वीकार किया जाता था। यहां तक कि कानून, पंचायत, न्याय और साहित्य के क्षेत्र में इसे प्रमाणिक और तथ्यपरक माना गया। इस समय तक रेडियो और टी. वी. सरकार के हाथ में और मुद्रित मीडिया निजी क्षेत्र में था। मीडिया का यह दौर कई मायनों में जीवन, समाज, संस्कृति, राजनीति, विज्ञान और शिक्षा को नई दिशा देने में रहा।

नब्बे के दशक में मीडिया के कई स्तरों पर बदलाव हुए। इन बदलावों के रूपों और स्तरों में बाज़ारीकरण को स्वीकारा गया और टी.वी. और रेडियो पर सरकारी नियंत्रण ढीला पड़ा। निजी क्षेत्र में, चौबीसों घण्टे चलने वाले चैनलों और एफ.एम. रेडियो चैनलों का सारे देश में बहुत बड़े स्तर पर विस्तार हुआ। उसी का प्रतिफल है कि आज देश में भारतीय भाषाओं में चलने वाले टी.वी. चैनलों ने अंग्रेज़ी चैनलों को पछाड़ दिया। करोड़ों लोग भारतीय भाषाओं में चलने वाले इन चैनलों से किसी न किसी रूप से जुड़े हुए हैं, इसे हमें मीडिया में आई नवक्रांति का दौर कह सकते हैं। इसे मीडिया का बहुबाज़ारीकरण भी कह सकते हैं। नई प्रौद्योगिकी के प्रयोग ने सोशल मीडिया की ताकत अजेय बना दी है। मीडिया का पहली बार इतना विशाल बाज़ार खड़ा हुआ है जिसने राजसत्ता और जनसत्ता दोनों को अपने नियंत्रण में ले लिया है। स्वदेशी और विदेशी, निजी पूंजी को खुले मन से शासन ने मीडिया में प्रवेश की अनुमति दी। इससे मीडिया पर निजी नियंत्रण का और भी विस्तार हुआ। शिक्षा, स्वास्थ्य, योग, मज़हब, रोज़गार, मनोरंजन, समाचार, विचार और विज्ञान को इस मीडिया ने आम जन तक अपनी पहुंच बनाने में बहुत मदद की। 'उपभोक्ता-क्रांति' के कारण विज्ञापन से होने वाली आमदनी कई गुणा बढ़ गई। प्रौद्योगिकी और उद्यमशीलता की दृष्टि से देखने पर हम ये पाते हैं कि प्रतिभा का ऐसा उपयोग सोशल मीडिया के कारण पहली बार किया गया। मीडिया का विज्ञापनी संस्कृति का यह दौर कई तरह से सामाजिक जीवन में असरकारी साबित हुआ।

इंटरनेट : भारत में 1995 में इंटरनेट का गांव, कस्बे और शहरों में बहुत तेज़ी के साथ विस्तार हुआ है। नई पढ़ी-लिखी पीढ़ी ने इसे हाथों-हाथ लिया है। जिस जानकारी, मनोरंजन, जीवन और मस्ती के स्तर की शायद कल्पना भी नहीं की जाती थी, उसे इंटरनेट के आते ही बहुत ही सहजता से हासिल हो गया है। इक्कीसवीं सदी के पहले दशक के अन्त तक बहुत बड़ी संख्या में लोगों के निजी और व्यावसायिक जीवन का एक अहम् हिस्सा नेट के माध्यम संसाधित होने लगा। अब तो ऐसा लगता है कि बिना नेट के समाज के किसी भी वर्ग की ज़िन्दगी आधी अधूरी है। पूरी दुनिया से जुड़ जाने का सुख नई पीढ़ी के लिए किसी चमत्कार से कम नहीं है। सम्पूर्ण सोशल मीडिया एक टच-स्क्रीन पर बहुत कम व्यय करके प्राप्त कर लेना, नई पीढ़ी के लिए किसी स्वप्न के साकार होने की भांति है। आज नेट की सहज उपलब्धता मोबाईल फोन पर होने से दुनिया की कोई भी जानकारी, आविष्कार, खोज, शोध, परीक्षण, रोज़गार, साहित्य, मनोरंजन, खेल, संगीत, गीत, समाचार, लेख, बातचीत, संदेश और संवाद एक पल के मोबाईल टच-स्क्रीन पर अंगुलियों का स्पर्श पाते ही सामने उपलब्ध हो जाता है। यह उपभोक्ता के लिए जादू की भांति है जो तत्काल ही सब कुछ उपलब्ध करवा देता है।

टी.वी. एवं डी.टी.एच. : टी.वी. ने अपने विज्ञापनी संस्कृति के बल पर आम आदमी को अपने वश में कर लिया है। केबल और डी.टी.एच. सेवा ने गांवों तक बहुत सहजता से टी.वी. स्क्रीन पर कई बड़े चर्चित चैनलों को उपलब्ध करवा दिया है। मनोरंजन, खेल, संगीत, सीरियल, खोज, योग, धर्म, आध्यात्म, राजनीति की हर पल की धड़कन, विज्ञान के आविष्कार और अन्य अनेक क्षेत्रों की सहज जानकारी केबल और डी.टी.एच. सेवा के माध्यम से, टी.वी. के माध्यम से प्रत्येक घर में उपलब्ध है। हर पल की खबर, हर दिन के खेल, संगीत और खेती-किसानी जैसी अनेक जानकारियां टी.वी. के माध्यम से आमजन को सुलभ हैं।

सकारात्मक पक्ष : मीडिया के सकारात्मक पक्ष की बात करें तो पाते हैं कि स्वास्थ्य, शिक्षा, रोज़गार, बाज़ार, व्यापार और खेतीबाड़ी जैसे कार्यों में भी मीडिया की पहुंच गहरी हो गई है। बेहतर सेहत के देशी-विदेशी नुस्खे, घातक बीमारियों के सहज ईलाज और गुमशुदा की खोज, वर-वधू खोजने से लेकर भविष्यफल और वास्तुशास्त्र की जानकारी सोशल मीडिया के माध्यम से जितनी सुलभता से आज प्राप्त हो रही है, वैसी कभी नहीं हुई। यदि हम जीवन, परिवार और समाज की बेहतरी के लिए सोशल मीडिया का उपयोग करें, तो अनेक लाभ घर बैठे भी प्राप्त कर सकते हैं। कृषि, बागवानी, उद्योग-धन्धे, बेहतर शिक्षा, बेहतर स्वास्थ्य, सुगम यात्रा, कानूनी जानकारी, अनेक समस्याओं के निदान, प्राकृतिक आपदा एवं

समस्त संसार के एक-एक कण और पल की स्थिति की जानकारी आज सोशल मीडिया के माध्यम से उपलब्ध कराई जाती है। पुस्तकों का स्थान धीरे-धीरे वेबसाईट ने ले लिया है। इन्हें डाउनलोड करके इनका बेहतर उपयोग किया जा सकता है।

सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र पर नकारात्मक प्रभाव : मीडिया के प्रभाव में आने से हमारे युवा विशेषकर गांव के, अपने गांव की मौलिकता, नूतनता और उत्तमता खोने लगे हैं। भारतीय संस्कृति, शिक्षा, स्वास्थ्य, भाषा, विज्ञान और अध्यात्म सभी कुछ विदेशी प्रभाव से विकृत होते जा रहे हैं।

ज़रूरी और गैर ज़रूरी किसी भी बात को सोशल मीडिया पर शेयर करने से नई पीढ़ी नहीं हिचकिचाती। युवा अधिकतर समय मित्रों के साथ बिताने में मशगूल दिखाई देते हैं। इससे उनके शारीरिक, मानसिक, और बौद्धिक विकास पर बुरा असर पड़ रहा है।

सोशल मीडिया के माध्यम से अश्लीलता, खुली व अनजान दोस्ती युवा पीढ़ी को अपराध की तरफ खींच रही है। इस तरफ गौर करने की आवश्यकता है।

रात-दिन नेट पर लगे रहने के कारण आंख, मस्तिष्क और अन्य अंगों पर बुरा असर पड़ रहा है।

कई बार नई जानकारियों के नाम पर निजी जानकारियां व फोटो और वीडियो मुफ्त में हासिल करके युवा कई प्रकार की समस्याओं का शिकार बन रहा है। बैंक खातों से पैसा निकल जाना इस तरह की आम समस्या है।

निजी जानकारी जैसे कि पूरा परिवार बाहर घूमने गया है, सोशल मीडिया पर डालने से चोरी, डकैती जैसी समस्याओं को न्योता देता है।

आतंकवाद, सांप्रदायिकता, नफरत, हिंसा, नई बीमारियों की चपेट में आने का डर, शराबखोरी, धूम्रपान, गन्दी लत और न जाने कितनी समस्याएं सोशल मीडिया के कारण तेज़ी से बढ़ रही हैं।

तो हमें ज़रूरत है सोशल मीडिया के अच्छे-बुरे प्रयोग पर गौर करने की। हमें मीडिया के नकारात्मक पक्ष को ध्यान में रखते हुए केवल सकारात्मक पक्ष के प्रयोग को बढ़ावा देना चाहिए। एक संतुलित जीवन, परिवार, समाज, संस्कृति और देश के लिए सोशल मीडिया के दोनों पक्षों पर हमें खुले मन से विचार करना चाहिए।

(*पृष्ठ21 का शेष*)

शामिल करने से फसल के बाद के नुकसान (जो कि आलू में 25 प्रतिशत है) को कम किया जा सकता है। इस प्रकार मूल्यवर्धन के माध्यम से आलू के उत्पाद बनाकर और आलू की विशिष्ट किस्मों को उगाकर बढ़े हुए राजस्व से किसानों को लाभान्वित किया जा सकता है। इस तरह आलू में मूल्य संवर्धन बहुत ही महत्वपूर्ण है।

सर्दी के मौसम में मुर्गीपालन : कैसे करें

✍ **प्रियंका[1], सतबीर शर्मा एवं औम प्रकाश[1]**

पशु शल्य चिकित्सा एवं रेडियालॉजी विभाग

ला. ला. रा. पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

सर्दी के मौसम में चूज़े आने से पहले विशेष तौर पर ध्यान रखने वाली बातें:

1. सबसे पहले सर्दी का मौसम आने से पूर्व पुराना बुरादा, पुराना आहार, पुराने बोरे और पुराने खराब पर्दे बदल देने चाहिएं।
2. फंगस का प्रवेश मुर्गीदाना गोदाम में रोकने के लिए कॉपर सल्फेट युक्त चूने के घोल से गोदाम की पुताई कर देनी चाहिए।
3. मुर्गी के खाने और पीने के बर्तनों को हर रोज़ विराक्लीन दवा से धोना चाहिए, यह दवाई संक्रामक रोगों से बचाती है।
4. सर्दी के मौसम में मुर्गीपालन करते समय चूज़ों की डिलीवरी सुबह के समय कराएँ, शाम या रात को बिलकुल नहीं कराएँ क्योंकि शाम के समय ठण्ड बढ़ती चली जाती है।
5. चूज़ों को ठंड से बचाने के लिए गैस ब्रूडर, बांस के टोकने के ब्रूडर, चद्दर के ब्रूडर, पैट्रोलियम गैस, सिगड़ी, कोयला, लकड़ी के गिट्टे, हीटर इत्यादि की तैयारी चूज़े आने के पूर्व ही कर लेनी चाहिए।
6. शेड के परदे चूज़ों के आने के 24 घंटे पहले से ही ढक कर रखें। चूज़ों के आने के कम से कम 2 से 4 घंटे पहले ब्रूडर चालू किया हुआ होना चाहिए।
7. जनवरी माह में अत्यधिक ठंड पड़ती है अत: इस माह में चूज़ा घर का तापमान 95 डिग्री फेरनहाईट होना अतिआवश्यक है। फिर दूसरे सप्ताह से चौथे सप्ताह तक 5-5 डिग्री तापमान कम करते हुए 85 डिग्री फारेनहाइट तक कर देना चाहिए।
8. मुर्गी आवास को गरम रखने के लिए मुर्गी आवास के ऊपर प्लास्टिक, बोरे, फट्टी आदि बिछा देना चाहिए और साथ-साथ एक अंगीठी या स्टोव मुर्गीघर में जला देना चाहिए, ताकि वे ठंड के प्रभाव से बच सकें। रात में जाली का लगभग 2 फीट नीचे का हिस्सा पर्दों से ढक दें।
9. तापमान को नियंत्रित करने के लिए दोहरे पर्दों का इस्तेमाल कर सकते हैं, परन्तु वेंटिलेशन का ध्यान रखना ज़रूरी है, नहीं तो पेट में पानी भरने की समस्या आ सकती है।
10. सही नमी (Humidity)- नमी लगभग 60 के आसपास होनी चाहिए।
11. ठण्ड के मौसम में सुबह के वक्त मुर्गीघर के अन्दर कम से कम दो घंटों तक धूप का प्रवेश वांछनीय है। अत: मुर्गीघर का निर्माण लम्बाई में पूर्व से पश्चिम की तरफ करना चाहिए।
12. सर्दी के मौसम में मुर्गियों के पास मुर्गीदाना हर समय उपलब्ध रहना चाहिए क्योंकि शीतकालीन मौसम में मुर्गीदाना की खपत बढ़ जाती है और यदि मुर्गीदाना की खपत बढ़ नहीं रही है तो इसका मतलब है कि मुर्गियों में किसी बीमारी का प्रकोप चल रहा है।

[1]पशु पालन एवं डेयरी विभाग, हरियाणा।

13. सर्दी में कम से कम 6 इंच की बिछाली मुर्गीघर के फर्श पर डालें, यह बिछाली मुर्गियों को फर्श की ठंड से बचाती है और तापमान को नियंत्रित किये रहती है।
14. मुर्गियों को बार-बार शुद्ध और ताज़ा पानी देते रहना चाहिए। पानी को शुद्ध और विषाणुरहित बनाने के लिए इसमें ऍक्वाक्योर मिलाना चाहिए।
15. वायरल बीमारियों से बचाने के लिए वैक्सीनेशन ज़रूर करें।

शुरुआत के कुछ दिन पोल्ट्री फार्म पर ही गुज़ारें ताकि तापमान या अन्य किसी गड़बड़ी को तुरंत सही किया जा सके। अत्यधिक सर्दी में थोड़ी सी लापरवाही से चूज़ों को वायरल हो जाता है तथा उनकी मौत हो जाती है। मुर्गियों को बीमारी से बचाने के लिए पशु-चिकित्सक की सलाह भी ली जा सकती है।

(*पृष्ठ 24 का शेष*)

संचार माध्यमों में बदलाव

पारम्परिक माध्यमों में से कुछ तो अपने-अपने कारणों से विलुप्ति के कगार पर हैं और कुछ अभी भी अपनी सार्थकता बनाए हुए हैं जिनमें समाचार पत्र, रेडियो, दूरदर्शन आदि शामिल हैं। इक्कीसवीं शताब्दी में मोबाइल फोन ने एक नई सूचना तकनीक क्रान्ति ला दी जिससे आधुनिक संचार तकनीक अत्यन्त सुलभ, सस्ती व तेज़ी से सूचना प्रदान करने में सक्षम हो गई है। इसका नाम सोशल मीडिया है जिसमें एस.एम.एस., व्हाटसएप, फेसबुक, यू-ट्यूब, फिल्में, लघु फिल्में, डाक्यूमैन्ट्रीज तथा रेडियो और टी. वी. पर प्रसारित होने वाले विज्ञापन, प्रदर्शनी किसान मेले, किसान दिवस आदि हैं।

आज लगभग 80 प्रतिशत किसानों के पास मोबाइल फोन उपलब्ध है तथा वे उनका लाभ कृषि की आधुनिकतम जानकारी प्राप्त करने, मौसम का हाल, मण्डियों के भाव जानने तथा खाद-बीज, दवाइयों के बारे में तुरन्त जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। संचार माध्यम कोई भी हो वह केवल सूचना पहुंचाने का साधन होता है। साधक तो वह संदेश होता है जो हमारे कार्य में बदलाव लाता है या नया कार्य करने की प्रेरणा देता है। अत: अब किसानों को न केवल सामाजिक या राजनैतिक मुद्दों पर सोशल मिडिया का प्रयोग करना चाहिए बल्कि कृषि, पशुपालन व अन्य सहायक व्यवसायों के बारे में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करके उसे प्रयोग में लाना चाहिए। जब हमने पुराने खाद बीज व दवाइयों में बदलाव कर लिया तो नए संचार माध्यमों का भी लाभ उठाना चाहिए ताकि समाज के अन्य वर्गों के साथ किसान भी कदम से कदम मिलाकर चल सके। कुछ युवा किसान तो गाय और भैंसों की बिक्री का कारोबार यू-ट्यूब के माध्यम से करके अच्छा पैसा कमा रहे हैं जो बदलते संचार माध्यमों का लाभ उठाने की एक अच्छी पहल है।

किसानों के लिए आवश्यक सूचना

कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय ने 8 अगस्त, 2018 को SO.3951(ई) के तहत एक सूचना जारी की है कि 12 कीटनाशक (इनसेक्टिसाइड्स+फंजीसाइड्स+हर्बीसाइड्स) का प्रयोग/इस्तेमाल 8 अगस्त 2018 से ही बन्द कर दिया जाए। छः कीटनाशकों का प्रयोग 31 दिसम्बर, 2018 से बन्द कर दिया जाए। इनकी सूची इस प्रकार है:

8 अगस्त, 2018 से प्रतिबंधित कीटनाशक

1. **बेनोमाईल** (Benomyl)
2. **कार्बाराइल** (Carbaryl)
3. **डायजिनॉन** (Diazinon)
4. **फेनारिमोल** (Fenarimol)
5. **फेन्थियॉन** (Fenthion)
6. **लिन्यूरॉन** (Linuron)
7. **मैथॉक्सी इथाइल मरकरी क्लोराइड** (Methoxy Ethyl Mercury Chloride)
8. **मिथाइल पैराथियॉन** (Methyl Parathion)
9. **सोडियम सायनाइड** (Sodium Cyanide)
10. **थियोमेटॉन** (Thiometon)
11. **ट्रायडमॉर्फ** (Tridemorph)
12. **ट्राइफ्लूरालिन** (Trifluralin)

31 दिसम्बर, 2020 से प्रतिबंधित होने वाले कीटनाशक

1. **एलाक्लोर** (Alachlor)
2. **डाइक्लोर्वास** (Dichlorvos)
3. **फोरेट** (Phorate)
4. **फास्फोमिडान** (Phosphamidon)
5. **ट्राइज़ोफॉस** (Triazophos)
6. **ट्राइक्लोर्फोन** (Trichlorfon)

नोट : किसी भी लेख में अगर इन कीटनाशकों के प्रयोग के बारे में लिखा है तो उसे रद्द माना जाए।

Integrated Farming System (IFS) – Need of an Hour

✍ **Anil Kumar Malik[1], Babu Lal Dhayal and Lokesh Yadav**
Directorate of Extension Education
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

In recent years, food-livelihood-water security as well as natural resources conservation and environment protection have emerged as major issues worldwide. Developing countries are struggling to deal with these issues and also have to contend with the dual burden of climate change and globalization. It has been accepted by everyone across the globe that sustainable development is the only way to promote rational utilization of resources and environmental protection without hampering economic growth. Developing countries around the world are promoting sustainable development through sustainable agricultural practices, which will help them in addressing socio-economic as well as environmental issues simultaneously. Within the broad concept of sustainable agriculture "Integrated Farming Systems" hold special position as in this system nothing is wasted, the by-product of one system becomes the input for other. It is an integrated approach to farming as compared to existing mono-culture approaches. It refers to agricultural systems that integrate livestock and crop production. Moreover, the system help poor small farmers, who have very small land holding for crop production and a few heads of livestock to diversify farm production, increase cash income, improve quality and quantity of food produced and exploitation of unutilized resources.

What is Integrated Farming System ?

Integrated Farming (IF) is a whole farm management system which aims to deliver more sustainable agriculture. Integrated farming systems has revolutionized conventional farming of livestock, aquaculture, horticulture, agro-industry and allied activities. It is sometimes called as Integrated Biosystems or Integrated Agriculture.

Concept of IFS : Basic concept behind IFS is that 'there is no waste' and 'waste is only a misplaced resource.' which become valuable material for another product.

Why IFS is needed ?

The need for integrated farming system in the present scenario is mainly due to high cost of farm inputs, fluctuation in the market price of farm produce, risk in crop harvest due to climatic vagaries and biotic factors. Environmental degradation, depletion in soil fertility & productivity, unstable income of the farmer, fragmentation of holdings and low standard of living add to the intensity of the problem.

Specific Objectives:

1. To integrate different production systems like dairy, poultry, livestock, fishery, horticulture, sericulture, apiculture, etc. with agricultural crops production as the base.
2. To increase farm resource use efficiency (land, labour and production/by- products) so as to increase farm income and gainful employment opportunity.
3. To promote multi-cropping, for multi-layered crops of economic value so as to sustain land productivity.
4. To maintain environmental quality and ecological stability.

Components of IFS:

In the integrated farming system, it is always emphasized to combine cropping with other enterprises/activities, many enterprises are available and these includes cattle maintenance sheep or goat rearing, poultry, piggery, rabbit rearing, bee keeping, horticulture, sericulture, etc. Any one or more can be combined with the cropping.

Benefits or Advantages :

1. **Productivity :** IFS provides an opportunity to increase economic yield per unit area per unit time by virtue of intensification of crop and allied enterprises.
2. **Profitability :** Use waste material of one component at the least cost. Thus reduction of cost of production and form the linkage of utilization of waste material, elimination of middleman interference in most input used. Working out net profit B/C ratio is increased.
3. **Potentiality or Sustainability :** Organic supplementation through effective utilization of byproducts of linked component is done thus providing an opportunity to sustain the potentiality of production base for much longer periods.
4. **Balanced Food :** We link components of varied nature enabling to produce different sources of nutrition.
5. **Environmental Safety :** In IFFS waste materials are effectively recycled by linking appropriate components, thus minimize environment pollution.
6. **Recycling :** Effective recycling of waste material in IFFS.
7. **Income Rounds the year :** Due to interaction of enterprises with crops, eggs, milk, mushroom, honey, cocoons silkworm, provides flow of money to the farmer round the year.
8. **Adoption of New Technology :** Resources farmer (big farmer) fully utilize technology. IFS farmers, linkage of dairy / mushroom / sericulture / vegetable. Money flow round the year gives an inducement to the small/ original farmers to go for the adoption technologies.
9. **Saving Energy :** To identify an alternative source to reduce our dependence on fossil energy source within short time. Effective recycling technique the organic wastes available in the system can be utilized to generate biogas. Energy crisis can be postponed to the later period.
10. **Meeting Fodder crisis :** Every piece of land area is

(Contd. on page 30)

[1]SRF, Directorate of Extension Education, CCSHAU, Hisar

Quality Improvement in Fruit Crops

✍ **Surender Singh, Mukesh Kumar[1] and R.S. Saini[2]**
SNIATTE
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

Quality of fruits refers to their desirable colour, appearance, organoleptic taste, flavor, texture, nutritive and medicinal value and other beneficial biochemical composition such as presence of sufficient vitamins, minerals, organic acids, sugars, enzymes, etc. in fruits. Quality also refers to absence of pesticidal residues on fruit skin, freedom from infection causing microorganisms and absence of diseased/rotten fruit parts. Basically fruit quality is a genetic character of particular variety which can be expressed by adopting the improved practices of fruit cultivation.

Following points should be kept in mind for producing better quality fruits :

Varieties : Fruits of best recommended varieties are of good quality with higher yields. It is not proper to grow seedling trees. The plant material must be vegetatively propagated from healthy trees bearing good quality fruits. Recommended varieties of different fruit species may be practiced for better quality and higher yield.

Irrigation : Commonly used method of irrigation by flooding is not ideal for fruit crops. Tube-well irrigations should be light and more frequent. Sometimes canal is out of schedule and water is not available for longer periods resulting into prolonged draught which may cause drop of flowers and fruits. The remaining fruits are undersized and poor in quality. Prolonged draught followed by heavy food irrigation may cause cracking of fruits. Drip irrigation is most ideal for majority of fruit crops, particularly in dry areas where water is scanty. Drip system improves fruit quality, saves 30 to 80 percent water, increases yield tremendously, reduces fertilizer requirement by 30 to 45 percent by mixing the readily soluble fertilizers like urea in irrigation water. Filters must be used to avoid blockage of drip lines. Lesser soluble fertilizers should be dissolved in water separately and put around the roots of individual trees in solution form without the help of drip lines to avoid clogging of drippers.

Training and Pruning : Training of the fruit trees should be done in a manner that sufficient air and light gets penetrated inside the foliage to facilitate proper coloration and development of fruit of superior quality. Annual pruning for good quality fruits is must in deciduous crops like grape, peach, plum, apricot, pear, apple, almond, mulberry, fig, phalsa and also in ber. Annual pruning for quality improvement is not essential in citrus, papaya, sapota, mango, guava, aonla, karonda and lasora. On the other hand, pruning of green leaves in banana, coconut, papaya and date palm is detrimental to fruit quality.

[1]KVK Bawal (Rewari), CCSHAU, Hisar
[2]KVK Mandkola (Palwal), CCSHAU, Hisar

Manures and Fertilizers : Organic manure or compost and fertilizers must be applied in the recommended doses. The soil should be got tested for different nutrients. Deficient nutrients out of the 17 essential elements should be supplemented with the general recommended doses.

Macro element potassium is very important for improving fruit quality. Potassium deficiency leads to poor fruit size, poor colour development, pre-mature fruit drop, delayed and uneven maturity of fruits. Potassium deficiency may be overcome by spraying 1% potassium sulphate solution in addition to the application of potassic fertilizers in soil for better quality of fruits.

Zinc deficiency is common which can be overcome by application of solid $ZnSO_4$, in soil and also with spray of 0.5% $ZnSO_4$, solution mixed with lime. Quality of ber fruits was better at harvest when ber fruits were sprayed with 1.5% urea and 0.5 per cent zinc sulphate in July and November. Similarly, quality of peach and plum fruits was better when sprayed with 3 kg $ZnSO_4$ with1.5 kg lime mixed in 500 liters of water.

Control of Weeds, Pests and Diseases : For production of better quality fruits, weeds should also be kept under check because they compete fruit crops for macro and micronutrients. They also deplete soil moisture. Care should be taken to keep the orchard free from pests and diseases. However, spray of pesticides directly on mature fruits must be avoided. Disease free plant material should be selected for planting in field. Care should be taken not to allow the entry of disease in orchard. A pest or a disease should be immediately controlled when it enters an orchard. The diseased parts must be burnt away to avoid further spread of diseases.

Harvesting : Much attention is to be paid during harvesting of fruits. Improper harvesting causes bruising and injury to fruits which spoils the look of the fruits and makes susceptible for pathogen infection. Manual harvesting is most desirable but it is very expensive method. Fruits like citrus can be harvested by pulling, clipping and shaking : Mango and guava fruits are harvested mainly by hand plucking but harvesting by clipping with picking poles is also being used. Fruits from high branches can be harvested with the help of clipper fixed on the pole with a collecting bag attached to it. Care should be taken that the fruit should not fall on the ground with such a force which may cause injury to fruits. To avoid injury, make the ground soft or provide cushioning with soft grass.

Pre- and Post-harvest Treatments : Thinning of fruits just after fruit set is done in grape, pear, date, peach, plum and apricot. In grapes, one panicle per shoot is retained and the remaining are removed before fruit set. Application of ethephon at varied concentrations at veraison stage in grapes, dates, plums and several other fruits improves fruit colour and enhances ripening. Application of 40 ppm GA at berry set in Thompson Seedless grapes increases berry size significantly. Fruit quality of grapes is

improved by girdling done by the removal of 5 mm thick ring of bark on stem. Ber fruits should be sprayed with 500 ppm Captan or Dithane M-45 to maintain quality of fruits in storage upto eight days. Lemon fruits should be dipped in 200 ppm GA solution for 10 min before keeping in storage. Harvested peach fruits treated with 1000 ppm potassium permanganate solution could be kept longer in storage under good condition. Kinnow fruits after harvesting should be treated with 1% $CaNO_3$+0.1% Bavistin for better quality in storage.

Environmental Pollution : Certain environmental pollutions deteriorate fruit quality. Black tip of mango, which is physiological disorder, is caused by excess SO_2 gas in smoke emitted by brick kilns near orchards. The remedy lies in raising the height of kiln chimney to avoid environmental pollution.

Storage : Quality of fruits in storage at room temperature and in cold storage can be maintained for longer duration with the help of certain pre and post-harvest treatments as mentioned below and with controlled atmosphere (CA) storage where the product is packaged in a polymeric film so that actively respiring and metabolizing fruits cause reduction in oxygen and increase in CO_2 concentrations around the fruits providing changed micro-atmosphere inside the package.

(From page 28)

effectively utilized. Plantation of perennial legume fodder trees on field borders and also fixing the atmospheric nitrogen. These practices will greatly relieve the problem of non – availability of quality fodder to the animal component linked.

11. **Employment Generation :** Combing crop with livestock enterprises would increase the labour requirement significantly and would help in reducing the problems of under employment to a great extent IFS provide enough scope to employ family labour round the year.
12. **Agro-industries :** When one of produce linked in IFS are increased to commercial level there is surplus value adoption leading to development of allied agro – industries.

Conclusion : Sustainable development is the only way to promote rational utilization of resources and environmental protection without hampering economic growth and Integrated Farming Systems hold special position as in this system nothing is wasted, the by-product of one system becomes the input for other. India has a considerable livestock, poultry population and crop wastes. IFS is a promising approach for increasing overall productivity and profitability through recycling the farm by-products and efficient utilization of available resources.

Pregnancy Diagnosis and its Management in Bitch

✍ **Swati Ruhil, Puneet Zhandai and Devan Arora**
Referral Veterinary Diagnostic and Extension Centre, Uchani
LUVAS, Hisar

Females of most domestic species are sexually receptive only at estrus i.e. every 17 to 21 days. Failure to return to estrus after a successful breeding is often the earliest indication of pregnancy in these animals. In the bitch, the average interval between periods of estrus is seven months, regardless of whether she becomes pregnant or not. Therefore, non-return to estrus is not a reliable indicator of pregnancy in the canine because the animal may suffer with pseudopregnancy. Palpation and radiographic or ultrasonographic imaging of the abdomen are the most common and widely accepted methods of pregnancy diagnosis in the bitch. Breeding behavior differs between bitches and mating may take place from several days before to several days after ovulation. For this reason, intervals between breeding dates and expected pregnancy-related events can vary significantly. On the other hand, if the day of ovulation can be established, then the related gestational events can be more precisely timed (Table 1). Canine pregnancies range from 62 to 64 days and are similar in length for all breeds when measured from the time of ovulation.

Ovulation is estimated to occur five to six days prior to the first day of diestrus. Diestrus is the stage of the reproductive cycle that immediately follows estrus. The first day of diestrus is characterized by decrease of cornified cells by 10% of vaginal cytology. In addition to vaginal cytology, ovulation can be estimated by measuring serum progesterone levels. Serum levels are low prior to estrus, but elevate sharply about two days before ovulation. For understanding in his article, first ovulation has been considered as day 0 (zero).

This article emphasizes the methods of pregnancy diagnosis in bitches those are common and routine in use.

1. **Abdominal palpation :** This procedure allows the experienced clinician to feel normal as well as abnormal structures within the abdomen. While the dog is standing and depending on the size of the animal, one or two hands are used to palpate the abdominal organs. Gravid uterus enlarges and can be more easily palpated. An abnormal condition (pyometra, mucometra, torsion) may develop that can also cause the uterus to be enlarged. Such a condition would need to be distinguished from a pregnant uterus. Pregnancy can be determined by abdominal palpation during a relatively short period of time (20 to 32 days after ovulation). If breeding dates are used to estimate the stage of embryonic development, a second examination seven to 10 days after the first may be necessary to correctly identify a pregnancy.
2. **Radiography :** Radiographic imaging (X-ray) of the abdomen is most accurate and easy method for determining pregnancy during the last third of pregnancy (43 to 63 days after ovulation). After 42 days, the fetal skulls and spines are visible on

Table 1: Approximate time of canine pregnancy events in relation to the time of ovulation and potential fertile matings (Concannon, P. W., 1986)

Pregnancy-related event	Number of days after ovulation	Number of days after fertile mating
Onset of estrus	-6 to +3	-
First of multiple matings	-7 to +5	-12 to 0
Fertile mating	-5 to +5	0
Ovulation	0	-5 to +5
Fertilization	2 to 5	0 to 7
Vaginal cornification reduced	5 to 7	0 to 12
Embryo attachment to uterus	14 to 16	9 to 21
Vesicles visible with ultrasound	15 to 17	10 to 22
Palpable 1 cm swellings	20 to 22	15 to 27
Fetal heartbeat visible (ultrasound)	22 to 23	17 to 28
Uterine swelling visible on X-ray	28 to 30	23 to 35
Palpability of swellings reduced	30 to 32	25 to 37
Earliest X-ray pregnancy diagnosis	43 to 45	39 to 50
Fetal pelvis visible on X-ray	51 to 55	46 to 60
Fetal teeth visible on X-ray	56 to 61	51 to 66
Whelping	62 to 64	57 to 69

radiographs. As pregnancy advances, the bones of the front legs become visible, followed by the bones of the rear legs, the pelvis and the ribs. Finally, the fetal teeth become visible around 56 to 61 days after ovulation.

Prior to day 40, the enlarged uterus may be visible on radiographs, but it may appear very much like the surrounding intestines. The contents of the pregnant uterus may be difficult to distinguish before fetal skeletons develop. As the pregnancy nears its end, the number of fetuses can be determined radiographically by counting fetal skulls. Brachycephalic breeds (English bulldogs, Boston terriers, boxers, etc.) have an increased risk for difficult deliveries due to the size and shape of the fetal skulls. Radiographic evaluations late in pregnancy will determine if the fetuses are developed sufficiently (teeth visible) to survive and whether or not a cesarean section should be performed.

3. Ultrasonography : For the pregnancy diagnosis, high-frequency sound waves are transmitted into the abdomen consequently; different tissues reflect the waves back to the ultrasound machine, which creates a 2-dimensional gray and white picture of the abdominal contents on the screen.

For this procedure, the bitch is lied down in dorsal/lateral recumbency. The belly hairs must be removed. A water-based gel is applied and the ultrasound transducer (probe) is then positioned on the belly wall. Embryonic vesicles can be visualized 15 to 17 days after ovulation. They appear as black circles, approximately 1mm in diameter within the uterus. By 19 to 20 days after ovulation, the vesicles are approximately 3 mm in diameter. If the uterine wall is included in the measurement, the vesicle will appear as 1cm of diameter. An accurate count is not always possible because some vesicles may not be seen and others may be observed more than once during the examination. Ultrasonographic examinations commonly performed from 24 days after ovulation, when fetal masses and heartbeats (120 to 150 beats per minute) can be visualized within the vesicles. With the ultrasound, fetal heartbeats are visible from 22 days after ovulation through the end of pregnancy. Heartbeats are often used to evaluate fetal life when complications arise during a delivery.

4. Hormonal and Biochemical Tests

Pregnancy Hormones : Unlike humans and horses that produce a pregnancy-specific gonadotropic hormone that can be quantitated by assay and thus utilized as an indicator of pregnancy, no similar or such hormone has yet been found in the dog. Recently, however, a hormone, known as relaxin, which is secreted by the placenta of the dog and functions to relax the pelvis before whelping, has been evaluated as specific marker for canine pregnancy. Serum relaxin is not present in non-pregnant dogs; however, concentrations of relaxin increase to detectable levels in the pregnant bitch approximately 25 days following breeding and peak at day 40 to 50.

Synbiotics (Malvern, PA) has developed an ELISA test, called ReproCHEK for detection of serum relaxin for the purpose of pregnancy testing in the bitch. For routine testing, a blood sample is obtained from the bitch 25 days after breeding or between days 22 to 26 after the LH surge. The relaxin assay is quite effective for distinguishing pseudopregnancy from actual pregnancy since relaxin hormone is absent in pseudopregnant bitches. Other applications for this assay include pregnancy monitoring, since sudden decrease in relaxin is an indicator of spontaneous abortion in the bitch.

Plasma Proteins : Testing of plasma proteins as indicators of pregnancy in the bitch have included assessment of fibrinogen and C-reactive proteins, which are commonly elevated in pregnancy and some other conditions. Serono Diagnostic (United Kingdom) offers one test for measurement of fibrinogen, which is elevated 25 to 30 days after breeding and as such may be used as an indicator between days 30 and 50 of pregnancy, after which levels decline. Testing for C-reactive protein also has indications for ability to diagnose pregnancy in that levels of this protein also increase between days 30 and 50 of pregnancy. However, because inflammatory responses associated with infection as well as placental development within the uterus may also lead to elevation of these proteins; hence there is a high incidence of false-positives when utilizing these indicators for determination of pregnancy.

Summary

Progressive events related to pregnancy are listed in Table 1. By 28 days after ovulation, uterine swellings can be palpated or visualized on radiographs. An ultrasonogram at this stage would identify vesicles with embryonic tissue masses and heartbeats. Ultrasonography also is beneficial for distinguishing between abnormal uterine conditions and pregnancy. Radiographic examinations are most useful during the last third of pregnancy, when fetal development can be evaluated and fetal numbers can be determined.

बेरोज़गार युवक एवं किसानों के लिए सर्टिफिकेट कोर्स आरंभ

✍ संदीप आर्य[1] एवं मंजु दहिया
विस्तार शिक्षा निदेशालय
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय के सायना नेहवाल कृषि प्रौद्योगिकी प्रशिक्षण एवं शिक्षा संस्थान को एग्रीकल्चर स्किल काउंसिल ऑफ इंडिया (एएससीआई) का अधिकृत केन्द्र बनाया गया है जहाँ विभिन्न विषयों में कौशल विकास के सर्टिफिकेट डिप्लोमा आरंभ किए गए हैं। यह सर्टिफिकेट प्राप्तकर्ता बेरोज़गार युवक एवं किसान स्वरोज़गार अपनाने, दूसरों को रोज़गार प्रदान करने, दूसरी संस्थाओं के लिए विशेषज्ञ बनने व अन्य संस्थाओं को सेवा देकर लाभांवित हो सकेंगे।

विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. के.पी. सिंह के अनुसार ये कोर्स किसी भी देश में कौशल विकास कार्यक्रम के लिए मुख्य रूप से बेरोज़गार युवाओं, किसानों एवं महिलाओं के लिए लाभपद्र साबित होंगे। साथ ही देश के आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए कौशल और ज्ञान दो प्रेरक बल हैं। यह सुनहरा अवसर हमें तभी लाभ देगा जब हमारे लोग विशेषकर युवा स्वस्थ, शिक्षित और कुशल होंगे। युवा किसी भी देश की रीढ़ की हड्डी होते हैं। इससे वे न केवल अपने जीवन में प्रगति की ओर अग्रसर होंगे बल्कि दूसरों के जीवन में भी बदलाव ला सकेंगे। विश्व में भारत युवाओं का देश माना जा रहा है जिसमें 18 से 35 साल के युवाओं की संख्या देश की जनसंख्या का 65 प्रतिशत है जोकि पूरे विश्व में उच्चतर स्तर पर मानी जा रही है, लेकिन बेरोज़गारी की समस्या भी देश में विद्यमान है और इन बेरोज़गार युवकों को ज़रूरी कौशल प्रशिक्षण देकर विकसित किया जा सकता है। इससे देश को आर्थिक विकास में अग्रणीय पायदान पर लाया जा सकता है।

प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के तहत पाठयक्रमों में सुधार, बेहतर प्रशिक्षण और प्रशिक्षित शिक्षकों पर ज़ोर दिया गया है। प्रशिक्षण में अन्य पहलुओं के साथ व्यवहार कुशलता और व्यवहार में परिवर्तन भी शामिल हैं। इस दिशा में मिशन के तौर पर प्रयास किया जा रहा है। राष्ट्रीय कौशल विकास मिशन की एक इकाई राष्ट्रीय कौशल विकास निगम एक गैर लाभ कंपनी है और गैर संगठित क्षेत्र समेत श्रम बाज़ार के लिए कौशल प्रशिक्षणों की ज़रूरतों को पूरा कर रही है जोकि मानव संसाधन और उद्योग विकास में एक नए युग की शुरूआत करेगी। नवगठित कौशल विकास और उद्यम मंत्रालय, राष्ट्रीय कौशल विकास निगम के माध्यम से 24 लाख युवाओं को प्रशिक्षण के दायरे में लाया जाएगा।

उल्लेखनीय है कि हाल ही में हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय , हिसार एवं एग्रीकल्चर स्किल काउंसिल ऑफ इंडिया के बीच समझौता हुआ है। समझौते के अनुसार हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय एवं एग्रीकल्चर स्किल काउंसिल ऑफ इंडिया द्वारा तैयार किए गए और नेशनल स्किल क्वालिफिकेशन फ्रेमवर्क द्वारा एप्रूव्ड क्वालिफिकेशन पैक्स के अनुसार प्रशिक्षणों का आयोजन करना, हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय द्वारा प्रशिक्षित प्रशिक्षणार्थियों का एएससीआई द्वारा मूल्यांकन और सफल प्रशिक्षणार्थियों को प्रमाणित करना, एएससीआई द्वारा विश्वविद्यालय के मास्टर्ज़ ट्रेनर्ज़ तैयार करना, स्किल डिवेल्पमेंट कल्चर का विकास और कृषि के विभिन्न क्षेत्रों जैसे फार्म मैकेनाइज़ेशन, बागवानी, बीज, फसल उत्पादन में क्षमता एवं जागरूकता संवर्धन करना, हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय और एएससीआई के मानव बल और मूलभूत सुविधाओं का मिलकर प्रयोग तथा हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय द्वारा संपर्क अधिकारी नियुक्त करना, एएससीआई के साथ गतिविधियों में सहयोग करना और कुशल एवं अर्धकुशल किसानों, कामगरों के लिए पूर्व लर्निंग कार्यक्रम संचालित करना शामिल हैं।

यह केन्द्र राष्ट्रीय आजीविका मानकों (एनओएस) तथा क्वालिफिकेशन पैक्स (क्यूपीएस) के अनुरूप होगा जिसमें 10 व 10+2 के बाद न पढ़ने वाले छात्र, बेरोज़गार युवक व किसान अपनी इच्छानुसार कोर्स का चयन करके प्रशिक्षण प्राप्त कर सकते हैं तथा प्रशिक्षण में प्राप्त ज्ञान को आय के साधन के रूप में प्रयोग कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त किसान कृषि को न केवल खेती के रूप में बल्कि व्यवसाय के रूप में अपनाकर अपने सपनों को साकार कर सकते हैं।

एग्रीकल्चर स्किल काउंसिल ऑफ इंडिया द्वारा हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय में आने वाले प्रशिक्षणार्थियों के लिए विभिन्न कृषि विषयों जैसे मधुमक्खी पालन, माली, गेहूं उत्पादन, मशरूम उत्पादन, बीज उत्पादन, ट्रैक्टर मेकेनिक, कंद/बल्ब फसल उत्पादन, बीज संसाधन श्रमिक, फूलों की खेती (पॉलीहाऊस व खुले खेत में), सूक्ष्म सिंचाई टैक्नीशियन, ट्रैक्टर ऑपरेटर, जैविक खेती, कीटनाशक एवं खाद एप्लीकेटर, मिट्टी एवं पानी जांच विश्लेषक, सोलोनेसियस फसल उत्पादन में मास्टर ट्रेनर्स तैयार किए गए हैं जो उपरोक्त कोर्सों में प्रशिक्षण प्रदान करेंगे। इन कोर्सों से हरियाणा के किसानों, बेरोज़गार युवकों व महिलाओं का कौशल विकास करके लाभ होगा तथा ये लोग इस कौशल से आय उपार्जन कर सकेंगे व मास्टर ट्रेनर्स भी कहलाएंगे। विश्वविद्यालय के क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्रों व कृषि विज्ञान केन्द्रों में भी उपरोक्त विषयों पर कोर्स चलाए जाएंगे।

प्रशिक्षण में प्राप्त ज्ञान से किसान, महिलाएं व बेरोज़गार युवक, विशेषकर जो युवक अपनी पढ़ाई पूरी नहीं कर पाए, अपना लघु व्यवसाय शुरू करके रोज़गार प्राप्त कर सकते हैं। इससे वे अपने परिवार का पालन-पोषण करने के साथ-साथ देश में चल रही बेरोज़गारी की समस्या को भी काफी हद तक कम कर सकते हैं। संस्थान द्वारा विभिन्न विषयों में प्रशिक्षण, सर्टिफिकेट कोर्स व डिप्लोमा कोर्स की प्रवेश प्रक्रिया 10 जनवरी 2019 से आरंभ कर दी गई है।

[1]कृषि वानिकी विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।